अध्याय–5

संगीत रत्नाकर में वर्णित तन्त्री वाद्य का अध्ययन

प्रत्येक शोध का जन्म किसी जिज्ञासा के फलस्वरूप ही होता है, शोधार्थी द्वारा भी इस शोध के विषय को चयनित करने का कारण भी जिज्ञासा ही है। शोधार्थी द्वारा संगीत रत्नाकर वर्णित वीणाओं के विषय में जानने की उत्सुक्ता व वीणाओं से जुड़ें तथ्यों को समझाने के उद्देश्य हेतु, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित वीणाओं का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी कला, संस्कृति, साहित्य व परम्पराओं के आधार पर होती है। कला राष्ट्र की सृजनात्मक शैली का प्रस्तुतीकरण करती है, सस्ंकृति राष्ट्र का रहन–सहन व संस्कारों को वर्णित करती है, साहित्य ज्ञान के दिव्य दर्शन को प्रस्तुत करता है व परम्पराएं राष्ट्र की आधार संरचना की मूल जड़ों के अवगत तथा परिचित कराती है। इसी प्रकारों भारत भी अपनी समृद्ध कला, संस्कृति, साहित्य व परम्पराओं के आधार पर सम्पूर्ण जगत में अपनी अलग पहचान रखता है।

इस प्रकार कला, संस्कृति, साहित्य व परम्पराएं इन सभी के ज्ञान का वृहद भंड़ार भारत की पावन मिट्टी में निहित है। कला अत्यन्त व्यापक व वृहद है, जिसमें मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य कला, पाककला संगीत आदि को सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार चौंसठ कलाएं मानी गयी है और सभी कलाओं में संगीत का अपना एक विशिष्ठा स्थान है, जो सभी में श्रेष्ठ माना गया है। संगीत का उद्गम व विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ होता गया, जो निरन्तर विकासशील है। संगीत को इस श्रेष्ठतम स्थान तक पहुँचानें में विद्वानों व गुणीजनों की मुख्य भूमिका रही है तथा महान संगीतज्ञों व विद्वानों के प्रयासों द्वारा निरन्तर परिवर्तन व विकास के पथ पर अग्रसर है।

इस प्रकार संगीत का मूल स्वरूप जो कि मौखिक था, उसे विद्वानों द्वारा संजोया गया और उसे वेदों व ग्रन्थों के रूप में लिपिबद्ध किया गया। सनातन परम्परा के अर्न्तगत कुल चार वेद माने गए है, जिसमें संगीत का आरम्भिक स्वरूप सर्वप्रथम सामवेद में निदिृष्ट होता है। साथ ही रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों में संगीत की जानकारी प्राप्त होती है। इस

प्रकार प्राचीन से वर्तमान तक संगीत समस्त युग व कालों के वेद, पुराण, महाकाव्य, उपनिषद, स्मृतियों तथा ग्रन्थों में विद्यमान रहा है। संगीत के सर्वमान्य आधार ग्रन्थ के रूप में नाट्यशास्त्र को स्वीकारा गया है। नाट्यशास्त्र कलाओं का ऐसा पुंज है जिसमें संगीत, अभिनय, मंचन, नृत्य इत्यादि का सम्पूर्ण ज्ञान समाहित है। नाट्यशास्त्र के अन्तिम छः अध्यायों में भरत मुनि द्वारा संगीत की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

इसके पश्चात् मुख्य ग्रन्थों में मतंग मुनि द्वारा वृहद्देशी, पाणिनी द्वारा अष्टाध्यायी, नारद मुनि द्वारा नारदीय शिक्षा व संगीत मकरन्द, नान्यदेव द्वारा भरतभाष्य। 11वीं शताब्दी के पश्चात् भारत की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ विषम होना आरम्भ हो चुकी थी। विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा भारतीय संस्कृति को क्षति पहुँचायी जाने लगी। विदेशी अक्रमणों द्वारा होने वाली क्षति से संरक्षण हेतु, भारत की विशुद्ध पराकृष्ट, मौलिकता की सुरक्षा हेतु, अभिज्ञ शास्त्रकारों व ग्रन्थकारों द्वारा पारम्परिक धरोहर की प्रतिभूत करने हेतु ग्रन्थ की रचना की गयी। इन श्रेष्ठ ग्रन्थों में संगीतमय धरोहर का अभिभावक ग्रन्थ संगीत रत्नाकर है, जो आचार्य पं० शारंगदेव जी द्वारा तेहरवीं शताब्दी में लिखा गया। संगीत रत्नाकर को पं० शारंगदेव जी द्वारा सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। जिस कारण इस महान ग्रन्थ को सप्ताध्यायी के रूप में भी जाना जाता है। इस ग्रन्थ के सात अध्यायों के नाम इस प्रकार है– स्वराध्याय, रागविवेकाध्याय, प्रकीर्णक अध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय तथा नृत्याध्याय। प्रस्तुत शोध कार्य के माध्यम से शोधार्थी द्वारा संगीत रत्नाकर में वाद्याध्याय में वर्णित तन्त्री वाद्यों पर प्रकाश डालनें का प्रयास किया जा रहा है।

संगीत रत्नाकर एक वृहद व विशाल ग्रन्थ है। संगीत के सम्बन्ध में समय–समय पर कई महान रचनाएं होती रही है। संगीत एक ऐसा महासागर है, जिसके विषय में लिखना, इस महासागर में एक बून्द डालने के समान है। संगीत की उत्पत्ति वेदों से मानी गयी है और उसमें सामवेद को संगीत के ग्रन्थ के रूप में देखा जाता है, क्योंकि ऋग्वेद की ही ऋचाओं का गेय रूप सामवेद में वर्णित है। वैदिक काल में यज्ञ के समय ऋचा के मन्त्रों का उच्चरण गेय पदों में किया जाता था। इन्हीं लय व स्वरबद्ध पदों के आधार पर संगीत का विस्तार होता गया। पं० शारंगदेव जी द्वारा रचित ग्रन्थ संगीत रत्नाकर के रूप में

जाना जाता है। संगीत रत्नाकर वर्तमान संगीत के आधार ग्रन्थ के परिचायक रूप में विद्यामान है, जिसे नाट्यशास्त्र के पश्चात् सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोधलेख के अन्तर्गत पं० शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर के छठें अध्याय में वर्णित वीणाओं का वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है, जिसके माध्यम से वीणाओं को जाना व समझा जा सके। तन्त्रीं वाद्यों के संदर्भ में वीणा को तन्त्री वाद्यों का पयार्य माना जाता है। सामान्य भाषा में तन्त्री वाद्य शब्द सुनते ही लोगों के मस्तिष्क में वीणा की ही छाप स्वतः बन जाती है। वीणा वर्तमान में प्रयुक्त होनें वाले सभी तन्त्री वाद्यों की जननी मानी जाती है, क्योंकि इन्हीं प्राचीन व मध्यकालीन वीणाओं के आधार पर वर्तमान में प्रयोग की जानें वाली वीणाओं का निमार्ण सम्भव हो सका है।

''वीणा नाम समुद्रोत्थितं नवरत्न''[(1)]

अर्थात्– समुद्र मंथन में प्राप्त होने वाले नौ रत्नों में से एक रत्न वीणा भी थी।

इस प्रकार इस विषय को शोधार्थी द्वारा इस प्रकार समझा गया है कि, वर्तमान का जन्म अतीत के गर्भ से ही हुआ है। वर्तमान तन्त्री वाद्यों का भी जन्म पूर्व की वीणाओं का ही संशोधित रूप है। पं० शारंगदेव द्वारा तेहरवीं शताब्दी में रचित इस ग्रन्थ को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है, इसे सप्ताध्यायी भी कहा जाता है। संगीत रत्नाकर का छठा अध्याय वाद्याध्याय है। इस अध्याय के अन्तर्गत शारंगदेव जी द्वारा 13वीं शताब्दी के सभी वाद्यों का वर्णन उनके आकार प्रकार व लक्षण के अनुसार किया है।

5.1 तन्त्री वाद्य

संगीत प्रायः देवो द्वारा उत्पन्न स्वीकारा जाता है व देवों द्वारा उत्पत्ति के पश्चात् यह धरती पर आया और अनादि काल से यह भावों का रंजन तथा भावों की अभिव्यक्ति करता आ रहा है। एतिहासिक दृष्टिकोण अपनाते हुए, इसकी समिक्षा करें, तो यह ज्ञात होता है कि हड़प्पा व मोहनजोदाड़ों से प्राप्त नृत्यांगना की मूर्ति इस तथ्य को स्पष्ट करती है, कि भारतीय संगीत कला एक अत्यन्त प्राचीन सभ्यता की संस्कृति का अंग थी। प्राप्त मूर्ति के आधार पर यह ज्ञात होता है, कि उस काल में संगीत कला असितत्व में थी, परन्तु किस

(1) शर्मा, भगवत शरण/भारतीय संगीत का इतिहास/संगीत मन्दिर, खुर्जा/पृ.–11

प्रकार का संगीत था, यह कह पाना मुश्किल है व इसकी पुष्टि करना भी सम्भव नहीं है। वैदिक युग के आगमन के साथ वेद पुराणों की रचना होती गयी और नव युग का आगमन हुआ, जिसे वैदिक युग कहा गया, जिसमें वेदों का सार निहित था। इस काल में चार वेदों की रचना हुयी। चार वेदों में सर्वप्रथम वेद ऋग्वेद की रचना हुयी, इसको प्राचीनतम वेद माना जाता है। गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का प्रचार इस काल में हो चुका था । ऋग्वेद के अर्न्तगत गीत शब्द के लिए गीर, गाथा, गिति, गायत्र व साम जैसे शब्दों को उपयोग में जाया जाता था। जब ऋग्वेद की ऋचाएं स्वरों में निबद्ध हुयी तो यही स्त्रोत कहे जाने लगे।(2) गीत के प्रबंध गाथा कहे जाते थे और गाथाओं का गान करने वाले को गाथिन नाम से सम्बोधित किया जाता था।(3) ऋग्वैदिक काल में गायन के साथ–साथ तन्त्री वाद्यों का भी मुख्य स्थान था। इस प्रकार ऋग्वेद के अर्न्तगत दसवें मंड़ल में गीत और वाद्यों की चर्चा प्राप्त होती है। यजुर्वेद में भी तन्त्री वाद्यों के महत्व को स्वीकारा गया है और वीणा को श्री का ही साकार रूप माना है।(4) प्रकाश महाड़िग द्वारा वर्णित तन्त्री वाद्यों का वगीकरण इस प्रकार है–(5)

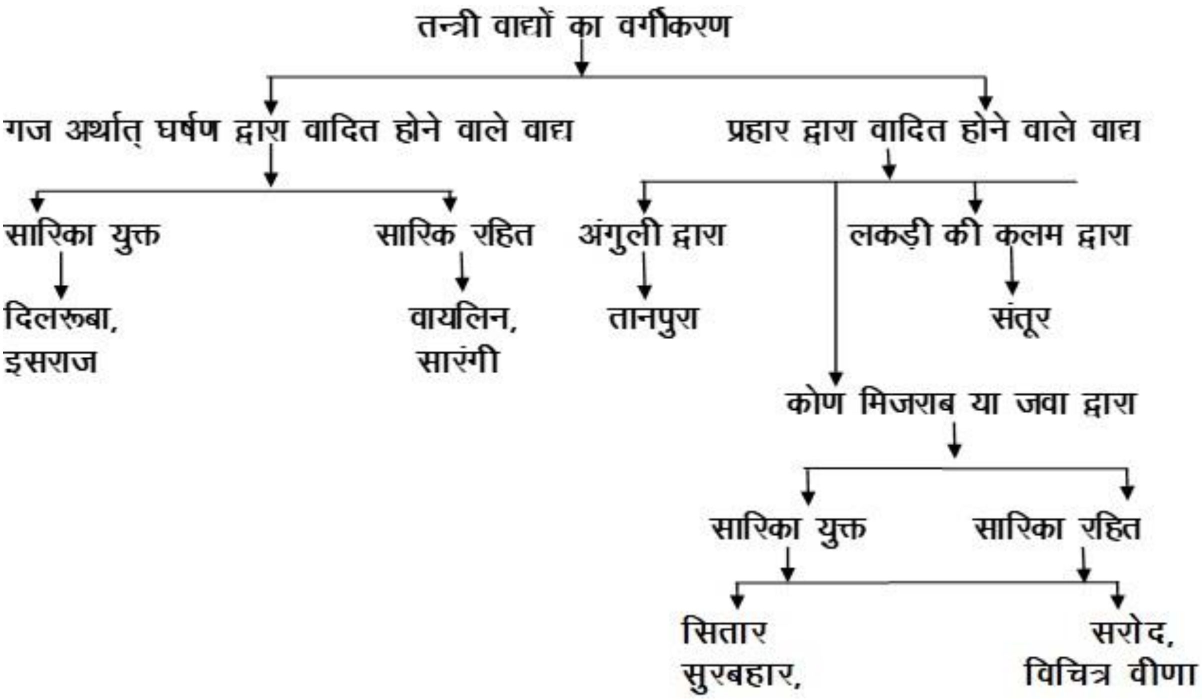

(2) शर्मा स्वतन्त्र/भारतीय संगीत एक एतिहासिक विश्लेषण/ पृ०–14
(3) परांजपे शरदचंद/भारतीय संगीत का इतिहास/ पृ०–20
(4) तैतरेय ब्राह्मण/3/9/14
(5) महाड़िक प्रकाश/भारतीय संगीत के तन्त्रीवाद्य/पृ०–14

सामवेद को संगीत ग्रन्थ के रूप में स्वीकारा जाता है व संगीतशास्त्रों का आधार व जननी के रूप में प्रचलित है, जिसके अन्तर्गत ऋग्वेद की ऋचाओं का गेय रूप में संकलन प्राप्त होता है। सामगान के स्वरों का गायन आरम्भ होने के पश्चात्, उन्हीं स्वरों की स्थापना वाद्यों पर हुयी और स्वर व वीणा आदि तन्त्री वाद्यों का महत्व बढ़ता गया। सामगान के अन्र्तगत भी तन्त्री वाद्यों के वादन का वर्णन प्राप्त होता है। 'वाण' अथवा 'बाण' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में वीणा के संदर्भ में प्रयोग किया गया है। इस प्रकार तन्त्री वाद्यों का क्रमिक विकास व महत्व आनादि काल से चला आ रहा है। रामायण, महाभारत, पाणिनी, जैनकाल सभी में तन्त्री वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है। रामायण का गान रूप में प्राप्त होता है। इसकी रचना काव्य के रूप में प्राप्त होती है। जिसे बाल्मीकि द्वारा रचा गया और बाल्मीकि द्वारा लव–कुश को गान के साथ–साथ वादन की विधि की भी शिक्षा दी गयी। जिसमें वीणा के महत्व को भी वर्णित किया। किष्किन्धा काण्ड़ के अन्र्तगत राम जी द्वारा संगीत का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जिसमें वीणा के स्वरों का भी वर्णन किया गया है।(6) रामायण के अन्र्तगत विपंची जैसी प्राचीन वीणा के विषय में भी ज्ञात होता है। साथ ही उसके सप्त जाति का भी वर्णन प्राप्त होता है।

विपंची परिगृह्यान्या नियता नृत्यशालिनी।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामिनी।।(7)

अर्थात्– सुन्दर नृतकी विपंची को अपने साथ लेकर, इस प्रकार से नींद के वश में जैसे अपने प्रिय या प्रितम के साथ कोई भामनी निद्रा में हो।

रामायण के पश्चात् द्वापर युग में रचित व वर्तमान से लगभग पाचँ हजार वर्ष पूर्व महाभारत की रचना हुयी।(8) द्वापर युग को कृष्ण भगवान के युग के रूप में भी जाना जाता है, जो स्वंय ही संगीत कहे जा सकते है और इस युग को श्री कृष्ण के कारण ही संगीत के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। साथ ही अर्जुन को भी वीणा वादक के रूप में जाना जाता था। इस प्रकार महाभारत का संगीत में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पाणिनी युग में वीणा का उल्लेख प्राप्त होता है। पाणिनी द्वारा वृन्दवादन हेतु 'तूर्य' शब्द की

(6) किष्किन्धा काण्ड़–रामायण / बाल्मिकी / सर्ग–28 / श्लोक–36–37
(7) सुन्दरकाण्ड़–रामायण / बाल्मिकी / सर्ग–10 / श्लोक–37–40
(8) पराजपे श्रीधर शरदचन्द / भारतीय संगीत का इतिहास / पृ०–154

व्याख्या की है और तूर्य के अर्न्तगत वीणा का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता था। कालीदास जी द्वारा अपनी कथा सस्कृत महाकाव्य रघुवंशम् के अर्न्तगत पारिवादक वीणा का वर्णन प्रस्तुत किया है। जिसमें सप्त तन्त्रियां थी।[(9)] सामगान के समय भी वीणा का वादन किया जाता था। इसके पश्चात् हर्षवर्धन के काल में मतंग मुनि जैसे महान संगीतज्ञ हुए जिन्होनें बृहद्देशी जैसे महान संगीत ग्रन्थ की रचना की। प्रो० रामकृष्ण कवि के मतानुसार किन्नरी वीणा का अविष्कार मतंग मुनि द्वारा किया गया।[(10)]

मध्य युग के आते–आते इसके पूर्व के सभी ग्रन्थों में विभिन्न स्थानों पर वीणाओं की जानकारी प्राप्त होती है व पं० शारंगदेव जी कृत संगीत रत्नाकर मध्य युग का श्रेष्ठतम् व महान ग्रन्थ है और पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय में वीणाओं का वर्णन किया है। इस प्रकार तन्त्री वाद्यों के विकास व परिवर्तन का क्रम देखने को मिलता है। तऩ्त्री शब्द के विषय में यह तथ्य प्राप्त होते है कि मुख्य रूप से शब्द तन्त्र है, जो संस्कृत विद्वानों द्वारा व्याख्यित किया गया है। श्री तारणीश झा द्वारा संस्कृत–शब्दार्थ कौस्तुभ में वर्णित किया है कि तन्त्र संस्कृत भाषा का शब्द है। तन्त्् धातु द्वारा निर्मित है। जिसका अर्थ है, संयम से रहना व शासन इत्यादि। तन्त्र शब्द तत् या तन्त्री वाद्यों के सम्बन्ध में भी प्रयोग होता है व इसका अन्य अर्थ तन्त्री है। जिसमें तन्त्् धातु में ई प्रत्यय को जोड़ तन्त्रि शब्द प्राप्त होता है। जिसका शाब्दिक अर्थ तार या Wire से है। इस प्रकार तार व तन्त्रियों से युक्त वाद्यों को तन्त्री वाद्य कहा जाने लगा। तत्, तन्तु इत्यादि सभी शब्दों का प्रादुर्भव तन् धातु से है जिसका अर्थ है–फैलाना, तानना।[(11)]

वीणा को ही समस्त तन्त्री वाद्यों की जननी के रूप में स्वीकारा जाता है। संगीत रत्नाकर वर्णित वीणाओं को ही आधुनिक तन्त्री वाद्यों का आधार स्वीकारा जा सकता है, क्योंकि अधिकतर वर्तमान में मौजूद वाद्य प्राचीन व मध्यकालीन वाद्यों के ही विकसित रूप है। संगीत रत्नाकर में वाद्यों सम्बन्धित अध्याय वाद्याध्याय है तथा वाद्य वर्णन के अर्न्तगत चार प्रकार के वाद्य प्राप्त होते है। इन वाद्यों में तन्त्री वाद्य, सुषिर वाद्य, घन वाद्य तथा अवनद्ध वाद्य सम्मलित है, जिनमें सर्वप्रथम तन्त्री वाद्यों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें

(9) दृ० रघुवंश–कालीदास / 8,33
(10) सिंह (डॉ०)संगीता / उत्तर भारतीय संगीत में तन्त्रवाद्यों का स्थान एंव उपयोगिता / पृ०–25
(11) सिंह ठाकुर जयदेव / भारतीय संगीत का इतिहास / पृ०–29

उनकी बनावट, लक्षण, स्वरूप आदि का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा वीणाओं है, जिसकी सम्पूर्ण संरचना प्रस्तुत की गयी है। संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय के श्लोक 29 में श्लोक 417 के मध्य विभिन्न वीणाओं का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जिनमें एकतन्त्री वीणा, नकुल वीणा, त्रितन्त्री वीणा, चित्रा वीणा, विपंची वीणा, मत्तकोकिला वीणा, आलापिनी वीणा, किन्नरी वीणा, पिनाकी वीणा व निःशंक वीणा नामक वीणाएं सम्मलित है।

5.2.1 एकतन्त्री वीणा

एकतन्त्री वीणा के विषय में जानकारी सर्वाधिक आरम्भिक वीणाओं व वैदिक वीणाओं के रूप में प्राप्त होती है, जिसे एक प्रमुख वीणा के रूप में स्वीकारा गया है। भरत मुनि निदृष्ट नाट्यशास्त्र, नारद कृत संगीत मकरंद आदि सभी में भी एकतन्त्री का वर्णन प्राप्त होता है। एकतन्त्री को ब्रह्माजी की वीणा के रूप में स्वीकारते हुए, इसे ब्रह्मी वीणा के नाम से भी सम्बोधित किया गया है। इससे पूर्व ब्रह्माजी को नाट्यवेद के अविष्कारक व नाट्यशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि के गुरू के रूप में व्यक्त किया गया है।(12) जैसा की नाम से ज्ञात होता है कि एकतन्त्री वीणा में मात्र एक तार ही होता था।

इयं ब्रह्मवीणंत्यपि कथ्यते।
श्रुतयोऽय स्वरा मूर्छास्तानां नानाविधास्तथा।
एकतन्त्रीकवीणायं सर्वमेत्प्रतितम्।।(13)

नान्यदेव द्वारा एकतन्त्री को ब्रह्मवीणा के नाम से सम्बोधित किया गया, जिस पर स्वर, श्रुति, मूर्च्छना व विभिन्न तानों का वादन होता था, इस तथ्य का अर्थ इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि एकतन्त्री वीणा पर सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रकार का वादन सम्भव था।

समुदायोऽस्ति नानत्र मतगोंऽप्याह तद्यथा।
एकतन्त्रयां स्वयमेवास्ति सरस्वतीत।।(14)

---

(12) मिश्र, पं० लालमणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृ0–31
(13) नान्यदेव/भरत भाष्य/भरतकोश/पृ०–89
(14) नान्यदेव/भरतभाष्य/भरतकोश/पृ०–89

अर्थात् नान्यदेव कृत भरत भाष्य में वर्णित है कि मतंग मुनि द्वारा एकतन्त्री को प्रत्यक्ष रूप से माता सरस्वती की वीणा माना है।

पं० शारंगदेव जी द्वारा एक तन्त्री के विषय में कहा गया है कि–

एषोपि जनकः प्रोक्ता घोषकश्चैकतन्त्रिका[15]

अर्थात् घोषा ही एकतन्त्री वीणा है।

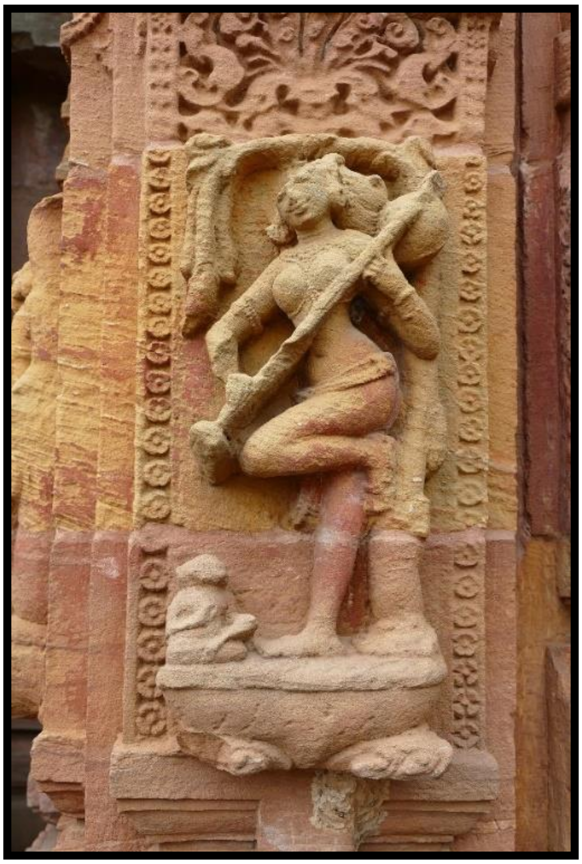

दसवीं शताब्दी,मुक्तेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर

पं० शारंगदेव जी द्वारा 'संगीत रत्नाकर' के अन्तर्गत एकतन्त्री वीणा के विषय में विस्तृत रूप से वर्णन प्रस्तुत किया गया है। एकतन्त्री वीणा को प्राचीनतम वीणाओं में से एक माना जाता है। इस वीणा के अनेक नाम प्रचलित थे। इसे ब्राह्मी वीणा के नाम से भी जाना जाता था। ऐसा मत है, कि ब्रह्माजी भरतमुनि के गुरू थे[16] और ब्रह्माजी द्वारा प्राप्त शिक्षा

(15) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर / अनुवादक–चौधरी सुभद्रा / वाद्याध्याय / श्लोक–109
(16) मिश्र पं० लालमणि / भरतीय संगीत वाद्य / पृ०–31

के पश्चात् ही भरतमुनि द्वारा नाट्यशास्त्र की रचना की गयी। यह एकतन्त्री वीणा ब्रह्माजी की वीणा थी, जिस कारण इसे ब्राह्मी वीणा भी कहा जाता था। इसी वीणा को घोषा, घोषक इत्यादि नामों से पुकारा गया। इस वीणा में एक तन्त्री ही होती है। नान्यदेव के मतानुसार ब्रह्म वीणा और एकतन्त्री दोनो ही साम्य ही है। एकतन्त्री वीणा अत्यन्त प्राचीन वीणा है, जो एक वैदिककालीन वीणा है। एकतन्त्री वीणा के महत्व को इस प्रकार समझा जा सकता है कि भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र के समय से लेकर पं० शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर तक के एक हजार वर्षों के लम्बे अन्तराल में एकतन्त्री वीणा सर्वाधिक लोकप्रिय व महत्वपूर्ण वीणा के रूप में जानी जाती रही।[17]

एकतन्त्री वीणा के कई नाम होने की बात विद्वानों द्वारा की गयी है, जिसमें घोषा, घोषक, ब्राह्मी इत्यादि नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिस प्रकार भरत मुनि जी द्वारा इसे घोषावती पुकारा गया है, व पं० शारंगदेव तक आते–आते यह एकतन्त्री के नाम से जानी जाने लगी।[18]

सभी ग्रन्थकारों द्वारा इसे ग्रन्थों में कई नामों से सम्बोधित किया गया। एकतन्त्री के नाम से ज्ञात होता है कि इस वीणा का नाम इसकी तन्त्रियों की संख्या के अनुरूप रखा गया, क्योंकि नाम के अनुरूप ही एकतन्त्री वीणा में एक ही तन्त्री होती थी। पं० शारंगदेव जी द्वारा एकतन्त्री वीणा का विस्तारपूर्वक वर्णन 13वीं शताब्दी के महान ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में किया गया।[19] संगीत मकरंद में वर्णित उन्नीस वीणाओं के वर्णन में एकतन्त्री का भी वर्णन किया गया है। संगीत चिन्तामणि के अर्न्तगत आचार्य ब्रहस्पति द्वारा वर्णित किया गया है कि एकतन्त्री वीणा मात्र एक तन्त्री से युक्त है। जिसे बांए हस्त में धारण किया जाता है, जो देखने में बांस के 12 अंगुल लम्बे श्लाक के समान है व उसी को तन्त्री से युक्तकर इस पर स्वरों की भिन्न–भिन्न सारणा प्रस्तुत की जाती है।[20] इसी प्रकार पं० लालमणि मिश्र जी का वक्तव्य है कि बाएं हाथ में धारण कर, जो कि 12 अंगुल की लकड़ी के समान है व जो गोल है, इसे हाथ में पकड़कर वादन किया जाता है व दाएं हाथ में

(17) मिश्र लालमणि/भरतीय संगीत वाद्य/पृ०–197
(18) मिश्र लालमणि/भरतीय संगीत वाद्य/पृ०–197
(19) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/श्लोक–29–53,57–61
(20) संगीत चिन्तामणि/आचार्य ब्रहस्पति/आधुनिक तंत्रवाद्यों की जननी वीणा/अनुपमा शर्मा/पृ०–92

कोण को पकड़कर या नाखुनों की सहायता से वादन किया जाता है, जिस पर सारणा व जाति गत स्वरों को प्रस्तुत किया जाता है।[21] पं० शारंगदेव जी द्वारा एकतन्त्री को उपलब्ध समस्त वीणाओं की जननी व जन्तदात्री स्वीकारा है।

प्रकृति सर्ववीणानामेषा श्रीशाङि्.गणोदिता।।[22]

डॉ० श्रीधर शरतचन्द्र परांजपे द्वारा एकतन्त्री वीणा को घोषक के नाम से सम्बोधित करते हुए, इसे आदि वीणा कहा है। एकतन्त्री वीणा के दण्ड़ के एक भाग में नारियल का तुम्बा स्थापित होता है व वादन हेतु वाम हस्त की तीन अंगुलियों से बांस के बने मिजराब को धारण किया जाता है तथा दांए हाथ की सहायता से तार दबाकर विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति जाती है व तीनों सप्तकों का वादन किया जाता है। एकतन्त्री वीणा के अंगों का वर्णन करते हुए, नौ अंगों की व्याख्या की गयी है, जो कि इस प्रकार है– दण्ड़, कुकुभ, तन्त्री, पत्रिका अर्थात घुड़च, तुम्ब, जवारी, दोरिका, दोरक अर्थात् रस्सी।[23] पंड़ितराध्याय चरित्र व बासवा पुराण में पं० सोमनाथ जी द्वारा इन दोनों ग्रन्थों के अर्न्तगत मात्र ब्रह्मवीणा का ही वर्णित किया है। इस प्रकार पं० अहोबल द्वारा भी संगीत पारिजात में ब्रह्म वीणा को वर्णित किया है। साथ ही संगीत राज, रसकौमुदी, व वाद्यविलास का वर्णन इस प्रकार है।

संगीत राज–राणा कुम्भा

वीणा घोषैकतन्त्र्या स्यात्तन्त्रीभ्यां नकुलाभिदा॥[24]

रसकौमुदी–पं० श्रीकण्ठ

घोषा–इयमेकतन्त्र्या वीणाया नामान्तरम्॥[25]

वाद्य प्रकाश–पं० विद्याविलासी

घोष्यका नाम को वीणा एकतन्त्रि न तस्यकिम॥[26]

---

(21) मिश्र लालमणि / भरतीय संगीत वाद्य / पृ०–197
(22) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर / अनुवादक–चौधरी सुभद्रा / वाद्याध्याय / श्लोक–109
(23) परांजपे डॉ० श्रीधर शरतचन्द्र / संगीत बोध / पृ०–136
(24) संगीत राज / राणा कुम्भा / भरत कोश / पृ०–945
(25)रस कौमुदी / पं० श्रीकण्ठ / भरत कोश / पृ०–194

इस प्रकार राणा कुम्भा, पं० श्रीकण्ठ व विद्या विलासी सभी के द्वारा घोषा वीणा को ही एकतन्त्री वीणा स्वीकारा है। एकतन्त्री को सुधाकलश जी द्वारा घोषावती तथा ब्रह्मवीणा कहा गया है व नारद जी तथा गजपति नारायणदेव जी द्वारा एकतन्त्री वीणा को घोषवती, घोषा तथा ब्रह्मीवीणा कहा गया है। इन सभी ग्रन्थों के ग्रन्थकारों के उल्लेख के आधार पर यह ज्ञात होता है कि जिस स्थान पर ब्रह्मी वीणा के विषय में जानकारी प्रदान की जाती है, वहाँ एकतन्त्री के विषय में वर्णन नहीं प्राप्त होता और इसी प्रकार जहाँ एकतन्त्री को वर्णित किया गया हो, वहाँ ब्रह्मी वीणा को वर्णित नहीं किया जाता। मध्यकाल से पहले के लगभग सभी ग्रन्थकारों द्वारा एकतन्त्री को ही सभी वीणाओं के जन्म का कारण माना है।

दर्शनस्पर्शने चास्या भोगस्वर्गापवर्गदे॥
पुनाति ब्रह्महत्यादिपातकैः पतितं जनम्॥54॥

दण्डः शम्भुरुमा तन्त्री ककुभः कमलापतिः॥
इन्दिरा पत्रिका ब्रह्मा तुम्बं नाभिः सरस्वती॥55॥

दोरको वासुकिर्जीवा सुधांशुः सारिका रविः॥
सर्वदेवमयी तस्माद् वीणेयं सर्वमङ्गला॥56॥[27]

अर्थात्– पं० शारंगदेव जी द्वारा एकतन्त्री वीणा सभी वीणाओं की जन्मदात्री मानते हुए, एकतन्त्री को कल्याणकारी, सर्व मंगलमयी व श्रेष्ठतम वाद्य माना है, व कहा है कि एकतन्त्री वीणा के दर्शन प्राप्त करने व स्पर्श कर पाने के सौभाग्य से स्वर्ग की प्राप्ती होती है, मोक्ष की प्राप्ती होती है। इसके अतिरिक्त ब्रह्म हत्या जैसे दोष का भी निवारण सम्भव है। क्योंकि एकतन्त्री वीणा के दण्ड़ में स्वयं महादेव का निवास है, तन्त्री में माता पार्वती का स्थान है, एकतन्त्री के अलाबु में भगवान विष्णु विराजमान है, लक्ष्मी जी पत्रिका में स्थापित है, ब्रह्मा जी तुम्ब में व एकतन्त्री की नाभि में माता सरस्वती जा का स्थान है। एकतन्त्री की डोरी वासुकी, चन्द्र जीवा में तथा सूर्य का स्थान सारिका कहा है। इस प्रकार एकतन्त्री वीणा में समस्त देवी–देवताओं का निवास है, जिस कारण यह एक अन्यन्त मंगलमयी वीणा है। प्रस्तुत श्लोक में सूर्य का स्थान सारिका में बतलाया गया है, जबकि एकतन्त्री सारिकारहित वीणा है।

---

(26) विलासी पं० विद्या / वाद्य प्रकाश / श्लोक–32
(27) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर / अनुवादक–चौधरी सुभद्रा / वाद्याध्याय / श्लोक–54–56

नाट्यशास्त्र के अर्न्तगत भरतमुनि द्वारा घोषावती वीणा को प्रत्यंग वाद्यों की श्रेणी में वर्णित किया है, नाट्यशास्त्र के काल के पश्चात् धीरे–धीरे सांतवी से 13वीं शताब्दी के मध्य एकतन्त्री वीणा का इतना अधिक प्रचार–प्रसार था कि कई मंदिरों, गुफाओं आदि में एकतन्त्री के चित्र दीवारों पर उत्कीर्ण किए गए, जो आज भी स्पष्ट परिलक्षित है।

शलाकां वेणुनिर्वृत्तां द्वादशाङ्गुलयाधिकाम्॥
वामहस्तकनिष्ठायां पृष्ठं विन्यस्य तत्परम्॥

संवेष्ट्यानामिकाङ्गुल्या तर्जन्यङ्गुष्ठकस्ततः॥
संपीड्य गाढमनया वादयेखिलान् स्वरान्॥

(संगीत सुधाकर : हरिपाल(पाण्डुलिपि)

अर्थात्– एकतन्त्री वीणा मात्र एक ही तन्त्री से युक्त है। बांस के 12 अंगुल लम्बी शलाक को बाएं हाथ में धारण कर कनिष्ठा से तार को आघातकर तर्जनी अंगुली से दबाते हुए भिन्न–भिन्न प्रकार से सारणाएं प्रस्तुत की जाती है।

श्रुतयोऽथ स्वरा मूर्च्छास्ताना नानाविधास्तथा॥
एकतन्त्रीकवीणायां सर्वमेतत्प्रतिष्ठितम्॥

(भरत भाष्य– नान्यदेव(पाण्डुलिपि)

अर्थात्– एकतन्त्री वीणा सारिकाविहीन होने से इस वीणा पर सभी प्रकार की मूर्च्छनाएं, ग्राम तथा श्रुतियों का प्रस्तुतीकरण सरलतापूर्वक सम्भव होता है।

पं० शारंगदेव जी द्वारा एकतन्त्री वीणा का सम्पूर्ण व स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया गया है, जो कि इस प्रकार है।–

5.2.1.1 पं० शारंगदेव वर्णित एकतन्त्री वीणा के लक्षण–

पं० शारंगदेव जी द्वारा एकतन्त्री वीणा को वर्णित करते हुए उसके सभी अंगों को विस्तारपूर्वक बतलाया है। जो कि इस प्रकार है।–

दण्ड़, ककुभ, पत्रिका एवम् शंकु, तुम्बे के आदि के लक्षणों का वर्णन

ग्रन्थिव्रणभिदा हीनः श्लक्ष्णः खदिरदारुजः॥
सुवृत्तः सरलो दण्डो वितस्तिपरिधिर्भवेत्॥21॥

त्रिहस्तदैर्घ्यस्तावच्च सुषिरं दधदन्तरा॥
सार्धाङ्गुलपरीणाहमूर्ध्वाधो वदने तथा॥30॥

कनिष्ठागुलिमानं वाभग्नं रन्ध्रत्रयं दधत्॥
त्रेताग्निसंस्थितं यद्वा द्वे रन्धे तर्जनीमिते॥31॥

एकमेव त्वधः शङ्कुस्थाने सार्धाङ्.गुलायतम्॥
दधानः ककुभं सारं खादिरं वान्यदारुजम् ॥32॥

तिर्यक्संस्थेन दैर्घ्येणाष्टाङ्गुलं त्र्यङ्.गुलायतम्॥
खअङ्गुलाधिकपार्वं च मध्ये कूर्मोन्नताकृतौ॥33॥

स्थितेन पत्रिकाधारगर्तेन च समन्वितम्॥
गर्तमध्ये च रन्ध्रेण योन्याकारेण संयुतम् ॥34॥

रन्ध्रे तस्य निविष्टेन रन्ध्रास्थौल्येन शङ्.कुना॥
अन्वितां पत्रिका मिश्रलोहजां द्वयङ्.गुलायताम॥35॥

चतुरङ्गुलदैर्ध्या च मध्ये कूर्मोन्नतां बहिः॥
निम्नमध्यं मनागन्तर्धारयन्तमधः पुनः॥36॥

द्विदण्डिकं शङ्.कुनाष्टाङ्गुलदैर्घ्ययुजा तथा॥
वृत्तेन त्र्यङ्.गुलस्थूलोत्तरार्धश्लक्ष्णमूर्तिना॥37॥

कूर्मपृष्ठोन्नतं मध्यमुत्तरार्धस्य बिभ्रता॥
दण्डवक्त्रमितस्थौल्याधरभागयुतेन च॥38॥

दण्डवक्त्रमितस्थौल्याधरभागयुतेन च विराजितम्॥
एवंविधस्य दण्डस्योर्ध्वाग्रात् सप्तदशाङ्गुले॥39॥

अधोभागेऽक्षिसदृशं विधाय विवरद्वयम्॥
एकद्वित्रिगुणां तन्त्रीं क्षिप्त्वा रन्धे परत्र तु॥40॥

तन्त्रीप्रान्तान्तरे क्षिप्त्वा प्रोतं तद् द्विगुणे ततः॥
द्विगुणाकर्षणात् कर्षेत् पुनरेवं समाचरेत्॥41॥

षष्ट्यङ्गुलपरीणाहं सुपक्वं वर्तुलं च यत्॥
तुम्बस्योत्सेधतस्तस्य वदनं द्वादशाङ्गुलम्॥42॥

वृन्तस्थानस्थया नाभ्याधोमुख्या मध्यरन्ध्रया॥
त्र्यड्.गुलायतया युक्तं पृष्ठसंश्लिष्टपूर्वया॥43॥

तुम्बकं मध्यरन्ध्र सत् कर्परं नालिकेरजम्॥
अन्तस्थरन्ध्रसंलग्नं पृष्ठमध्येन रन्ध्रिणा॥44॥

तं दधत्,
रन्ध्रमध्येऽथ तन्त्रीप्रान्ते निवेश्य तौ॥
संवेष्ट्य कीलकेऽन्तस्थे कीलकं भ्रामयेन्मुहुः॥45॥

तावद् यावत् दृढो बन्धस्तुम्बकस्यैव जायते॥
एवं तुम्बकमुत्तानं दण्डे तज्ज्ञैर्निबध्यते॥46॥

दोरकं नागपाशेन द्विगुणेनान्वितं ततः॥
सुबलश्लक्ष्णसूत्रोत्थं दण्डे तुम्बोर्ध्वदेशतः॥47॥

संवेष्ट्य नागपाशेऽस्मिन् बद्धप्रान्तां दृढां घनाम्॥
श्लक्ष्णां स्नायुमयीं तन्त्री कृष्ट्वा संपीड्य पत्रिकाम्॥48॥

तन्त्र्या संवेष्ट्य ककुभं निबध्नीयाद् दृढं,
ततः॥
वैणवी यवविस्तारा तन्त्री द्व्यङ्गुलदैर्घ्यभाक्॥49॥

तन्त्रीपत्रिकयोरन्तर्जीवा नादस्य सिद्धये॥
सन्दिग्धपत्रिकातन्त्रीश्लेषं क्षेप्या कला च सा॥50॥

या पक्ववेणुवल्कोत्था दोरिका त्रिवृता शुभा।
कनिष्ठाङ्गुलिविस्तारा द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यभाक्॥51॥

सुवृता मसृणा तुम्बादधस्तादङ्गुलत्रये॥
दण्डे संवेष्टयेन्मन्द्रस्वरस्थानोपलक्षिकाम्॥52॥
यत्राभिदधिरे धीरास्तां वीणामेकतन्त्रिकाम्॥[28]

एकतन्त्री वीणा के दण्ड़ निर्माण में प्रयोग की जाने वाली लकड़ी सभी प्रकार के दोषों से विहीन, बिना किसी गाँठ व किसी भी प्रकार से कटी न हो ओर न ही फटी हो, जो सुन्दर गोलाकार व सीधी होनी चाहिए। एकतन्त्री वीणा के निमार्ण हेतु खैर के वृक्ष की लकड़ी

(28) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/श्लोक–21–52

अर्थात् कत्थे के वृक्ष की लकडी का प्रयोग किया जाता है, जो कि 12 अंगुल अर्थात् एक वितस्ति की गोलायी व लम्बाई में तीन हाथ होनी चाहिए। इस लकड़ी को अन्दर से लम्बाई में पोली या खोखली होनी चाहिए। इस लकड़ी के दोनों मुहांने खुले होने चाहिए अर्थात् अन्दर से खोखली हो और लगभग ड़ेढ़ अंगुल का भीतरी घेरा हो। साथ ही कनिष्ठा अंगुल की मोटाई के तीन छोटे छिद्र व दो छिद्र तर्जनी अंगुल के समान किए जाएगें। साथ ही जिस स्थान पर शंकु की स्थापना की जानी है, वहाँ एक ड़ेढ़ अंगुल का छिद्र ड़ाँड़ में किया जाना चाहिए। ककुभ को एक प्रकार से घुड़च समझा जा सकता है, जो खैर आदि लकड़ी द्वारा ही निर्मित होता है, जिसकी लम्बाई आठ अंगुल, चौड़ाई तीन अंगुल और एक अंगुल से कुछ अधिक होती है, जिसे आड़ी स्थिति में स्थापित करते है। यह ककुभ बीच में से कछुएं की पीठ के समान उठी हुयी होती है। इसमें एक खांचा बना होता है, यह खांचा ककुभ से छोटा होता है, जिसमें नालिका के समान छोटी छिद्र होता है। ककुभ स्थित खांचे में छिद्र के बराबर मोटाई का ही कील अर्थात् शंकु को फंसा कर उसमें मिश्रित लोहे से निर्मित पट्टी को ककुभ के बीच में स्थापित किया जाता है। यह पट्टी ककुभ के आकार से छोटी लम्बाई में चार अंगुल लम्बी तथा चौडायी में दो अंगुल होती है। ककुभ को दो ड़ंड़ियों वाले शंकु पर स्थापित किया जाता है, जिसे दण्ड़ के नीचे में मुंहाने पर फंसाया जाता है।

दण्ड़ के ऊपरी सिरे से सत्रह अंगुल के स्थान को छोड़कर दो तिरछे आँखों के समान एक ही सीध में दो छिद्र बनाने है, जो कि ड़ांड के पिछले भाग अर्थात् नीचे की ओर हो, जिसमें एक छिद्र के अन्दर एक, दो अथवा तीन गुनी ड़ोर अथवा तार को एक सिरे से दूसरे सिरे में ड़ाल विपरित छिद्रों में दो बार समान रूप से पिरोते हुए, ड़ोर अथवा तार को मजबूती से बाँध दिया जाएगा। आठ अंगुल की ऊंचाई वाले दो पके हुए तुम्बों को ले, जिसका मुख बारह अंगुल ऊंचाई का हो और पेट अर्थात् मध्य भाग 48 अंगुल का हो साथ ही दोनों को गोल होना चाहिए। इन दोनों तुम्बों को दण्ड़ पर स्थापित करें तुम्बें के वृत्त स्थान पर तीन अंगुल की चौड़ाई तथा जिसके मध्य भाग में छिद्र हो, इस प्रकार के नीचे की ओर मुख वाला नाभि को स्थापित करेंगें व नारियल के खोपरे को दोनों तुम्बों के अन्दर रखकर उस पर दोनों छिद्रों से दो तांत को स्थापित करेंगें और नारियल के खोपरे से नीचे छोटी कील को फंसाकर उस पर तार को लगाएगें और इसे इस प्रकार से लगाना है, जिससे तुम्बे की

नाभि दाण्ड़ से पूर्णतः चिपक जाए और वहीं स्थापित रहें जिसे चिबुक की संज्ञा दी गयी है।

इस प्रकार से दोनों तुम्बों के दण्ड़ के साथ मजबूती से बंध जाने पर किसी रेशम या सूत की डोरी से उसे मजबूती से बंधा जाए और ककुभ की ओर दण्ड़ पर तांत की गांठ लगायी जाएगी। बांस की पकी हुयी छाल से दो अंगुल चौडायी वाली जीवा अर्थात् पट्टी को तार के मध्य मे लगाए, जिसे वर्तमान में जवारी के नाम से जााना जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य ध्वनि व स्वरों को बुलन्द व खुलापन लाना होता है। जिसके माध्यम से स्वरों की मधुरता में वृद्धि होती है। जिस प्रकार तानपुरे में घुड़च पर डोरी को तार मे मध्य फसांया जाता है। उसी प्रकार एक तन्त्री वीणा में भी सूत अथवा धागे को जीवा में फंसाया जाएगा। बांस की पकी हुयी छाल जो लम्बाई में बारह अंगुल हो, उसे कनिष्ठा के नाखुन की चौड़ाई के समान तुम्बे में नीचे की ओर तीन अंगुल दण्ड़ पर लपेटा जाऐगा, जिसे मन्द्र स्थान के भेद के रूप में जाना जाएगा। इस प्रकार के गुणों व लक्षणों से युक्त वीणा को एकतन्त्री वीणा कहा है।

5.2.1.2 एकतन्त्री की स्तुति–

प्रकृतिः सर्ववीणानामेषा श्रीशाङ्र्गिणोदिता ॥53॥
दर्शनस्पर्शने चास्या भोगस्वर्गापवर्गदे ॥
पुनाति ब्रह्महत्यादिपातकैः पतितं जनम् ॥54 ॥

अर्थात्– पं० शारंगदेव जी द्वारा एकतन्त्री वीणा को समस्त वीणाओं की जननी, आधार व मूल माना गया है व वर्णित है, कि एक तन्त्री वीणा को देखने, छूने (स्पर्श) करने व भोग से स्वर्ग की प्राप्ती होती है तथा एकतन्त्री वीणा मोक्ष प्रदान कराने वाली वीणा है, जिसमें माध्यम से ब्रह्म हत्या जैसे पाप से भी मुक्ति प्राप्त होती है।

5.2.1.3 एकतन्त्री वीणा में देवताओं का स्थान–

दण्डः शम्भुरुमा तन्त्री ककुभः कमलापतिः ॥
इन्दिरा पत्रिका ब्रह्मा तुम्बं नाभिः सरस्वती ॥55॥

दोरको वासुकिर्जीवा सुधांशुः सारिका रविः

सर्वदेवमयी तस्माद् वीणेयं सर्वमङ्गला ॥56॥[29]

अर्थात्– एकतन्त्री के दण्ड़ में महादेव, तन्त्री अर्थात् एकतन्त्री वीणा के तार में उमा, ककुभ में भगवान विष्णु, पत्रिका में माता लक्ष्मी, तुम्बे में ब्रह्मा जी, तुम्बे की नाभि में माँ सरस्वती, वासुकि जी का स्थान डोरी में माना है, और जीवा तथा सारिका में क्रमशः चन्द्र व सूर्य को वर्णित किया है। इस प्रकार एकतन्त्री वीणा को समस्त देवताओं की पूजनीय और मंगलमयी कहा है।

5.2.1.4 एकतन्त्री को धारण करने व वादन की विधि–

अधस्तुम्बमधोवक्त्रमूर्ध्वा तन्त्री यथा भवेत ॥
तथास्या दोरिकादेशं वामस्कन्धे निधाय च ॥57॥

ककुभं दक्षिणस्याङ्घ्रेः पाष्ण्र्या संधाय यत्नतः ॥
न्यस्तां पृष्ठे कनिष्ठाया वामहस्तस्य कम्रिकाम् ॥58॥

सारणात् सारणेत्युक्तामनामाङ्गुलिवेष्टिताम् ॥
आकुञ्चन्मध्यमापार्श्वलग्नां तर्जनिकाग्रतः ॥59॥

निपीड्योरःस्थलासन्नां तन्त्रीमधिनिधाय च ॥
ऊर्ध्वाधः सारयेन्नादसिद्ध्यै हस्तं तु दक्षिणम् ॥60॥

त्यक्वा वितस्तिं जीवातस्तन्त्रीं विन्यस्य सारयेत् ॥
अन्यत्रोपरिवाद्यात्तं नोर्ध्वं वक्षःस्थलान्नयेत् ॥61॥[30]

एकतन्त्री वीणा में प्रयोग होने वाले तुम्बों का मुख नीचे रखा जाता है और तार को ऊपर की ओर रखा जाएगा। इसे बाएं कन्धे पर धारण करें, दांए पैर की एड़ी पर ककुभ को रखें क्रमिका को बांए हाथ की कनिष्ठा अंगुली के द्वारा करें। जिसे सारणा कहा है। कनिष्ठा के अतिरिक्त साथ की दूसरी अंगुली से भी सारणा संभव मानी गयी है, व मध्यमा को आड़ी कर तर्जनी अंगुल के आगे के भाग से छाती के समीप वीणा को लगाकर रखे तथा तीनों सप्तकों अर्थात् मन्द्र, मध्य तथा तार के वादन हेतु दाएं हाथ से आघात करें तथा बाएं हाथ के माध्यम से सारणा अर्थात् क्रिया से स्वर प्रस्तुत करें।

सारण भेद

---

(29) चौधरी सुभद्रा/पं० शारंगदेव/संगीत रत्नाकर/वाद्याध्याय/श्लोक–55–56
(30) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/श्लोक–57–61

कम्रिका तत्क्रिया चोक्ता सारणा सा चतुर्विधा॥
उत्क्षिप्ता संनिविष्टाख्योभयी स्यात् कम्पितेत्यपि॥62॥

श्लिष्टा तन्त्रीं यदोत्प्लुत्य निपतेत् सारणान्मुहुः॥
तदोत्क्षिप्ता संनिविष्टा स्पृष्ट्वैव सारणे भवेत॥63॥

क्रमादेतद् द्वयाभ्यां स्यादुभयी सारणा मता॥
स्वरस्थाने कम्पनेन कम्पिता कम्रिकोच्यते॥64॥[31]

अर्थात्– जीवा अर्थात् जवारी के स्थान से 12 अंगुल डाड की ओर ऊपर स्वर उत्पत्ति हेतु तार पर आघात कर वादन करें व वादन की क्रिया वीणा पर वादक द्वारा छाती तक के करने के नियम बताए है। इसे क्रमिका नाम से उल्लेखित किया गया है, व सारणा के सार प्रकारों को भी वर्णित किया है, जो कि इस प्रकार है–

उत्क्षिप्ता– इसके अर्न्तगत स्वर उत्पत्ति के लिए पहले तार दबाएं फिर अंगुली को उठा ले व पुनः स्वर हेतु तार दबाए, इस विधान को उत्क्षिप्ता कहा है।

सन्निविष्टा– तार पर अंगुली स्पर्श करते हुए, दूसरे स्थान पर अंगुली से वादन करें। यह क्रिया सन्निविष्टा कही जाएगी।

उभयी– तार को दबाए और अंगुली उठा ले और अन्य स्थान पर स्पर्श कराएं, इस क्रिया को उभयी सारणा कहा है।

कम्पित– तार को दबाते हुए अंगुली की सहायता से कम्पन्न उत्पन्न करने की क्रिया ही कम्पित सारणा कही है।

हस्तव्यापार संग्रह–

घातः पातश्च संलेखस्तथोल्लेखावलेखकौ॥
भ्रमरः संधितच्छिन्नौ नवमी नखकर्तरी॥65॥

व्यापारा दक्षिणस्येति,
पाणेर्वामस्य तु द्वयम॥
स्फुरितः खसितश्चेति करयोरुभयोस्त्वमी॥66॥

(31) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/श्लोक–62–64

घोषो रेफोऽथ बिन्दुः स्यात् कर्तरी चार्धकर्तरी ॥
निष्कोटिताख्यः स्खलितः शुकवक्त्रश्च मूर्च्छना ॥67 ॥

तलहस्तोऽर्धचन्द्रश्च प्रसारः कुहरोऽपरः ॥
त्रयोदशेति सर्वेऽमी स्युश्चतुर्विंशतिर्युताः ॥68 ॥

करनामान्यपीमानि मन्वते वाद्यवेदिनः ॥
घातः स्यान्मध्यमाक्रान्ततर्जन्या तन्त्रिकाहतिः ॥69 ॥

घातः केवलया पातः,संलेखोऽन्तस्तयाऽऽहतिः ॥
अन्तर्मध्यमया घातमुल्लेखं संप्रचक्षिरे ॥70 ॥

अवलेखो मध्यमया स्यात् तन्त्रीताडनं बहिः ॥
अङ्गुल्यान्येऽन्ययाप्याहरुल्लेखं चावलेखकम ॥71 ॥

सर्वाभिस्तिसृभिस्द्वाभ्यामथवेति च ते जगुः ॥
अन्तर्बहिर्मुखौ घातौ तयोस्ते ब्रुवते क्रमात् ॥72 ॥
भ्रमरोऽन्तःक्रमाच्छीघ्रं चतुरङ्गुलिताडनम ॥
मध्यमानामिकाभ्यां तु बहिर्घातोऽत्र संधितः ॥73 ॥

तर्जनीपावलग्नायास्तन्त्या बहिरनामया ॥

हननं च्छिन्नमाचष्टे श्रीमत्सोढलनन्दनः ॥74 ॥

क्रमाद् द्रुतं नखैर्घातश्चतुर्भिर्नखकर्तरी ॥
स्फुरिते कम्पिता तन्त्रीपृष्ठलग्नेव सारणा ॥75 ॥

मुहुः सारणया तन्त्रीघर्षणं खसितो मतः ॥
तन्त्री लग्नाङ्गुष्ठपार्श्वा कर्तरीवच्च हन्यते ॥76 ॥
कनिष्ठासारणाभ्यां वा यत्रासौ घोष उच्यते ॥

दक्षिणानामया यत्र तन्त्रीरन्तर्निहन्यते ॥77 ॥
वामस्य मध्यमाङ्गुल्या बहिस्तं रेफमूचिरे ॥

अनामया बहिस्तन्त्रीघाताज्जातो यदा ध्वनिः ॥78 ॥
तर्जन्या धार्यते बिन्दुर्निःशङ्केनोदितस्तदा ॥

अङ्गुलीभिश्चतसृभिः क्रमेण करयोर्द्वयोः ॥79 ॥
बहिस्तन्त्रीहतिस्तूर्णं कर्तरी कीर्तिता बुधैः ॥

दक्षिणः कर्तरी कुर्याद् वामहस्तस्तु तन्त्रिकाम् ॥80॥
यत्र सारणया हन्ति प्राहुस्तामर्धकर्तरीम् ॥

उत्सृष्टसारणां यत्र हन्ति तन्त्री प्रदेशिनी ॥81॥
निष्कोटिताभिधं पाणिममुं वाद्यविदो विदुः ॥

उत्क्षिप्तया सारणया वामस्तन्त्रीं द्रुतं यदा ॥82॥
निहन्ति कर्तरीतुल्यो दक्षिणः स्खलितस्तदा ॥

तन्त्रीकर्षोऽङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां शुकवक्त्रकः ॥83॥
उद्वेष्टपरिवर्ताभ्यां तन्त्या भ्राम्यति दक्षिणे ॥

स्वरस्थाने द्रुतं कम्रासारणं मूर्च्छना मता ॥84॥
तलेन दक्षिणो हस्तस्तन्त्रीं हन्तीतरः पुनः ॥

प्रदेशिन्या स्पृशेद् यत्र तलहस्तो भवेदसौ ॥85॥
स्पर्शोऽङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यामर्धचन्द्रोऽभिधीयते ॥

चतुरङ्गुलिसंघाते कुञ्चिताङ्गुष्ठके तले ॥86॥
कनिष्ठातर्जनीपार्श्वस्पर्शस्तन्त्याः प्रसारकः ॥

करस्य किंचित् साङ्गुष्ठसकलागुलिकुञ्चने ॥87॥

कनिष्ठागुष्ठसंस्पर्शस्तन्त्र्याः स्यात् कुहरः करः ॥[32]

अर्थात्– हस्त व्यापार के संदर्भ में वर्णन प्रस्तुत किया गया है,

सर्वप्रथम दाएं हाथ के वादन विधि का वर्णन किया गया है। जो कि इस प्रकार है–

घात– तर्जनी अंगुली के ऊपर मध्यमा अंगुली को रखकर वादन करना।

पात– मात्र तर्जनी अंगुली की सहायता से वादन करना।

संलेख– तर्जनी अंगुली के आगे के हिस्से से अन्दर की ओर वादन करना।

उल्लेख– मध्यमा अंगुली के द्वारा अन्दर की ओर वादन करना।

अवलेख– अवलेख को उल्लेख का विपरीत समझे और इसमें मध्यमा अंगुली से ही वादन बाहर की ओर करें।

---

(32) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/श्लोक–65–87

भ्रमर– हाथ की सभी अंगुलियों की सहायता से शीघ्रता से अन्दर की ओर आघात कर वादन करना।

सन्धित– अनामिका व मध्यमा अंगुली के द्वारा बाहर की तरफ वादन करना।

छिन्न– तर्जनी को तार के निकट रख आनामिका के द्वारा बाहर की तरफ वादन करना।

नखकर्तरी– सभी अंगुलियों से क्रम से शीघ्रता से नाखुनों की सहायता से वादन करना।

इसके पश्चात् बाएं हाथ के वादन प्रयोगों को वर्णित किया है–

स्फुरित– वर्तमान जमजमा का स्वरूप समझा जा सकता है। इसके अर्न्तगत अंगुली को स्वर उत्पन्न करने हेतु तार पर अंगुली से आगे–पीछे हिलाते हुए वादन किया जाता है।

खसित– तार पर अंगुली को घिसने की क्रिया खसित कही जाती है।

संयुक्त वादन प्रयोग का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

घोष– दांए हाथ का अंगुठा तार के निकट स्थापित कर अन्य समस्त अंगुलियों से वादन करे तथा बांए हाथ की सबसे छोटी अंगुली अर्थात् कनिष्ठा द्वारा तार को दबाए, इस क्रिया को घोषा कहा गया है।

रेफ– दांए हाथ की अनामिका अंगुल के नाखुन को तार के नीचे रखते हुए बांए हाथ की मध्यमा अंगुल को ऊपर से रखते हुए वादन करने को रेफ कहा है।

बिन्दु– दांए हाथ की अनामिका अंगुल द्वारा तार पर खुला आघात कर वादन करें व बांए हाथ की तर्जनी द्वारा तार को दबाए, इस प्रकार गंकार की ध्वनि उत्पन्न होगी, उसे ही बिन्दु की संज्ञा दी गयी है।

कर्तरी– दांए व बांए दोनों हाथों की समस्त अंगुलियों के द्वारा शीघ्रता से बाहर की ओर वादन करना कर्तरी कहा गया है।

अर्धकर्तरी– बाएं हाथ के द्वारा क्रमिका को दबाते हुए दाएं हाथ की सभी अंगुलियों से वादन करना अर्धकर्तरी कहा गया है।

निष्कोट– बाएं हाथ से तार को दबाते हुए सरकाएं और दाएं हाथ की तर्जनी से वादन करना निष्कोट कहलाता है।

स्खलित– यह कृन्तन के समान की क्रिया है, जिसमें बाएं हाथ से पहले एक स्थान पर दबाए और फिर वही दूसरे स्थान पर दबाए, और साथ ही दाएं हाथ की सभी अंगुलियों के नाखुनों द्वारा वादन करें, इसे स्खलित क्रिया कहा जाएगा।

शुकवक्त्र– तार को दांए हाथ की तर्जनी व अंगुठे से छेड़े और साथ ही तार को बाएं हाथ की तर्जनी से दबाए।

मूर्च्छना– बाएं हाथ के द्वारा कमां के मध्यम से स्वरों को कम्पित करें तथा दाएं हाथ से वादन करें।

तल–हस्त– बाएं हाथ की तर्जनी से तार को स्पर्श करें और व दाएं हाथ की तली से तार का वादन करें।

अर्ध–चन्द्र– तार को दाएं हाथ से बजाए और बाएं हाथ के अंगुठे और कनिष्ठा के द्वारा पकड़ लें।

प्रसार– बाए हाथ की तर्जनी अंगुली को तार पर स्थापित करें व दाएं हाथ की सभी अंगुलियों के द्वारा तन्त्री का वादन करें।

कुहर– बाए हाथ की कनिष्ठा और अंगूठें से तार को छुते हुए दाए हाथ की सभी अंगुलियों और अंगूठें को सिकोड़तें हुए वादन करें।

इस प्रकार वादन में प्रयुक्त होने वाले हाथों के व्यापारों पं० शांगदेव जी द्वारा कहा गया है। जिसे वीणा हस्त कहा गया है।

5.2.1.5 वीणा वादन की विधि

एतद्धस्तसमायोगाद् वादनं वाद्यमुच्यते ॥88 ॥
छन्दो धारा कैकुटी च कङ्कालं वस्तु च द्रुतम ॥
गजलीलं दण्डकं चोपरिवाद्यमतः परम् ॥89 ॥
वाद्यं पक्षिरुतं चेति दशधा परिकीर्तितम् ॥
खसितस्फुरितौ यत्र क्रियेते बहुधा करौ ॥90 ॥

तारं च स्पृश्यते स स्याच्छन्दो यतिमनोहरः॥
स्खलितो मूर्च्छना चाथ कर्तरीरेफसंयुतौ॥91॥
उल्लेखरेफौ यत्रास्तां धारां ब्रूते हरप्रियः॥
शुकवक्त्र स्फुरितको घोषः स्यादर्धकर्तरी॥92॥
क्रमादेते करा यत्र तामाहुः कैकुटीं बुधाः॥
स्फुरितैमूर्च्छनासंज्ञैः कर्तरीत्रितयेन च॥93॥
युक्तं करैः क्रमादेभिः कङ्कालं कथितं बुधैः॥
स्पृष्टतारमुपेतं यत् कर्तर्या खसितेन च॥94॥
कुहरेणाथ तद्वाद्यं वस्तु वस्तुविदो विदुः॥
कर्तरीखसितौ यत्र क्रमेण कुहरः करः॥95॥
रेफभ्रमरघोषाश्च तद् द्रुतं ब्रवते बुधाः॥
बहुधा मूर्च्छना हस्ताः स्फुरिताः कर्तरी ततः॥96॥
खसिंतो यत्र तत् प्राहुर्गजलीलं कलाविदः।
स्खलितो मूर्च्छनाख्यश्च कर्तरीरेफसंयुतः॥97॥
खसितो यत्र वाद्यज्ञा दण्डकं तत्रभाषिरे॥
ऊर्ध्वाधोगी क्रमाद्धस्तौ रेफकर्तरिकाह्वयौ॥98॥
निष्कोटिततले हस्तौ द्वावप्युपरिवाद्यके॥

समस्तहस्तवाद्यं तु वाद्यं पक्षिरुतं मतम्॥99॥
सकलं निष्कलं चेति द्विविधं वाद्यमुच्यते॥

तन्त्रीसंलग्नजीवातः स्थूलो यत्र ध्वनिर्भवेत्॥100॥

तदुक्तं सकलं वाद्यमपरे त्वन्यथा जगुः॥
आदोरिकां पत्रिकां चेत् तर्जनीस्पर्शवर्जितम्॥101॥

सार्यते कम्रिकावाद्यं तदाहुः सकलाभिधम्॥
अपनीय कलां कम्रामधो नैषाददेशतः॥102॥

न नयेत् तर्जनीस्पर्श तन्त्र्याश्चेन्निष्कलं तदा॥
सूक्ष्मश्चात्र भवेन्नादः सारणामत्र केचन॥103॥

आमध्यमस्वरस्थानं सारणायां प्रपेदिरे।(33)

(33) पं० शरंगदेव जी कृत–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/श्लोक–88–103

अर्थात्–पं० शारंगदेव जी द्वारा वीणा वादन के प्रकारों का वर्णन किया गया है, जो कि इस प्रकार है–

छन्द– स्फुरित व स्खलित क्रिया के संयुक्त प्रयोग से मन्द्र, मध्य तथा तार में वादन करना ही छन्द कहा गया है।

धारा– छः वीणा हस्तों का प्रयोग जिनमें स्खलित, मूर्च्छना, कर्तरी, रेफ, उल्लेख तथा पुनः रेफ सम्मलित है, उसे धारा कहा है।

कैकुटी– शुकवक्त्र, स्फुरित, अर्धकर्तरी और घोष चारों वीणा हस्तों को प्रयोग में लाया जाए वह कैकुटी कहलाता है।

कंकाल– कंकाल के अर्न्तगत पाँच वीणा हस्तों स्फुरित, मूर्च्छना, कर्तरी, नखकर्तरी और अर्धकर्तरी का प्रयोग किया जाता है।

वस्तु– कुहर, स्खलित तथा कर्तरी का संयुक्त प्रयोग वस्तु है।

द्रुत– द्रुत के अर्न्तगत कर्तरी, स्खलित, कुहर, रेफ, भ्रमर और घोषा नामक वीणा हस्तों का प्रयोग होता है।

गजलील– स्फुरित, कर्तरी, स्खलित के साथ बहुल्यता से मूर्च्छना को प्रयोग करने से गजलील कहा जाएगा।

दण्डक– दण्ड़क स्खलित, मूर्च्छना, कर्तरी और रेफ का संयुक्त रूप है।

उपरिवाद्य– तार के नीचे के भाग के कर्तरी, निष्कोटिक तथा तलहस्त और ऊपर के भाग में रेफ का प्रयोग हो उसे उपरिवाद्य कहा गया है।

पक्षिरूत– समस्त चौबिस वीणा हस्तों का क्रमिक रूप से संयुक्त प्रयोग पक्षिरूत कहा गया है।

इसके अतिरिक्त अन्य दो वादन विधि कही गयी है–

सकल– **1.** आधौरिका तथा पत्रिका को क्रमिका के माध्यम से सारणा करना सकल कहा जाता है।

2. दायीं ओर से तन्त्री को जीवा के मध्य स्थान से अर्थात् जिस स्थान से नाद की उत्पत्ति होती है, वह सकल कहा जाता है।

निष्कल– **1.** बिना तर्जनी अंगुली के निषाद के ऊपरी भाग में कम्रा के माध्यम से सारणा करना निष्कल कहलाता है। **2.** निषाद से मध्यम तक क्रमिका के माध्यम से सारणा करना निष्कल है।

अवोचदिति निःशङ्कः शिष्याभ्यासाय वादनम् ॥104 ॥
श्रुत्यादिक्रमतो गीतनिष्पत्तौ त्विदमादिशेत् ॥

वक्ष्यामः स्वररन्ध्राणां यद् वंशेऽष्टादशाङ्गुले ॥105 ॥
प्रथमे सप्तके स्थानं वीणायामपि तन्मतम् ॥
स्वराणां किंतु वैणानामधराधरतारता ॥106 ॥

मध्यमे सप्तके स्थानं ततः स्याद् द्विगुणान्तरम् ॥
तृतीये सप्तके स्थानं ततोऽपि द्विगुणान्तरम् ॥107 ॥

अङ्केत च स्वरस्थानान्यमूनि सुखबुद्धये ॥
यथास्वं स्वरभेदानां विभागाच्छ्रुतिदेशधीः ॥108 ॥

स्याद् ग्राममूर्च्छनादीनामुबोधः सुकरस्ततः ॥
एषाऽपि जनकः प्रोक्ता घोषकश्चौकतन्त्रिका ॥109 ॥(34)

अर्थात्– पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है कि विद्यार्थियों व शिष्यों के अभ्यास हेतु गीत की निष्पत्ति व श्रुति आदि को कहा है, वंशी में नीचे के भाग की ओर जाने पर स्वर मन्द्र सप्तक की ओर उन्मुख होता है, परन्तु उसी स्थान पर वीणा में नीचे के भाग की ओर जाने पर तार सप्तक के स्वरों की प्राप्ती होती है क्योंकि वहाँ कम्पन्न का क्षेत्र छोटा हो जाता है। इस प्रकार तारता भेद का वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा किया गया है। श्रुतियों के स्थान की समझ रखने वाले संगीतज्ञ आनन्द व सुख की अनुभूति हेतु, अपनी सूझ–बूझ के अनुसार प्रयोग करें व इसके माध्यम से ग्राम, मूर्च्छना आदि को समझना व करना आसान व सरल हो जाता है।

---

(34) पं० शरंगदेव जी–संगीत रत्नाकर / अनुवादक–चौधरी सुभद्रा / वाद्याध्याय / श्लोक–104–109

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा एकतन्त्री वीणा का सम्पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें एकतन्त्री वीणा के लक्षणों, विधानों, वीणा–हस्तों का वर्णन तथा वादन विधि का पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया गया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित इस एकतन्त्री का अध्ययन करने पर वर्तमान में प्रयुक्त होने वाले कई तन्त्री वाद्यों के साथ साम्यता प्राप्त होती है जिससे यह ज्ञात होता है कि वर्तमान में भी एकतन्त्री वाद्य असितत्व में है, जो मात्र समय के विकास के पहिए के साथ–साथ विकसित होता गया है। वर्तमान में विद्वानों व संगीतज्ञों द्वारा एकतन्त्री वीणा के स्वरूप को वर्णित किया गया है। एकतन्त्री वीणा के कई नामों का वर्णन पूर्व में शोधार्थी द्वारा किया गया है। जिनमें एकतन्त्री वीणा को घोषा, घोषक, ब्राह्मी इत्यादी नामों से सम्बोधित किया गया है।

एकतन्त्री वीणा को कई विद्वानों द्वारा समस्त वीणाओं की जन्मदात्री स्वीकारा गया है। एकतन्त्री के वर्तमान स्वरूप की चर्चा करने पर आरम्भिक दृष्टि में एकतन्त्री वीणा को एकतारे से सम्बद्ध मान लिया जाता है, परन्तु यह कहना उचित प्रतीत नहीं होगा, क्योंकि शोधार्थी द्वारा तथ्य के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है, कि यहाँ मात्र नाम मे ही साम्यता प्राप्त होती है व एकतन्त्री वीणा में सम्पूर्ण गान विधान के अनुसार तीनों सप्तकों के वादन में समर्थ था, परन्तु एकतारे के सम्बन्ध में यह वादन सभंव नहीं है। एकतारा मात्र एक स्वर के वादन व एक स्वर की उत्पत्ति तक ही सीमित है। एकतन्त्री के सम्बन्ध में विचित्र वीणा का भी नाम प्राप्त होता है, जिसके नाम में तो कोई साम्यता नहीं प्राप्त होती है, परन्तु वाद्य तथा वाद्य की वादन शैली में समानता प्राप्त होती है।

5.2.1.1 विचित्र वीणा

विचित्र वीणा को बट्टावीणा भी कहा जाता है। विचित्र वीणा को प्राचीन कालीन एकतन्त्री, ब्राह्मी, घोषावती इत्यादी नामों से जाना जाता था।[35] वर्तमान में इसका प्रचार कुछ प्रभाव में आया है। विचित्र वीणा के आरम्भिक काल में इसका वादन अत्याधिक कठिन माना जाता था, जिस कारण इसका वादन कुछ ही संगीतज्ञों द्वारा किया जाता था। तानसेन के वंश परम्परा में रूद्रवीणा को प्रचार बढ़ गया, जिस कारण विचित्र वीणा के वादन में बृद्धि नहीं हो सकी, परन्तु वर्तमान युग में विचित्र वीणा के प्रचार–प्रसार में बृद्धि होना आरम्भ हो

---

(35) महाडिक प्रकाश / भारतीय संगीत के तंत्रीवाद्य / पृ०–122

गयी। विचित्र वीणा का वादन अभी भी अत्यन्त न्यून स्तर पर ही होता है, जो कि समय के साथ–साथ विद्यार्थियों और श्रोताओं की रूचि का केन्द्र बन रहा है। विचित्र वीणा के प्रमुख व प्रसिद्ध वादक के रूप में स्व० पं० लालमणि मिश्र जी का नाम सर्वविदित है[36] एवम् स्व० डॉ० हीर जी भाई पातरावाला म्यूजिक कालॅज बड़ौदा के पूर्व प्रधानाचार्य का भी नाम उल्लेखनिय है। विचित्र वीणा और रूद्रवीणा की बनावट में जनमानस को अधिक अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता है। दोनों में ही मात्र पर्दों का ही अन्तर मालूम होता है, मानों विचित्र वीणा को पर्दे लगाकर रूद्र वीणा का स्वरूप प्राप्त किया गया है।

स्वरूप को वर्णित करते, हुए वर्णित किया गया है, कि विचित्र वीणा के दण्ड़ की लम्बाई 50 इन्च है, दण्ड़ की चौडाई 4 इन्च या 5 इन्च व गहारई, 2 इन्च बतायी गयी है। दण्ड़ के निर्माण हेतु शीशम, तुन्न इत्यादि की लकड़ी के प्रयोग को उत्तम माना गया है। इस प्रकार विचित्र वीणा एक विशाल आकृति की वीणा मानी गयी है। इसके दण्ड़ को तीन भागों में विभक्त किया गया है, जिसमें से प्रथम भाग के अर्न्तगत खूंटियाँ होती है, यह भाग लगभग 12 इन्च का माना गया है व इसका ऊपरी शीर्श पक्षी के आकार का होता है। इसके पश्चात् दूसरे भाग को मुख्य दण्ड़ के रूप में जाना जाता है, इस भाग की लम्बाई 36 इन्च कही है। इस भाग में चिकारियों की खूटियाँ सम्मिलित है। चिकारियों की खूंटियाँ पाँच कही है, जिनमें से मुख्य या बड़ी चिकारियाँ तीन है, जो दाएं ओर व दो अन्य चिकारियाँ बाएं ओर स्थित है, व तरब की संख्या 11 से 15 के मध्य मानी गयी है। जिसकी सभी खूंटियाँ दाएं ओर स्थित है। यह तरब की तारें सितार के समान ही है व दण्ड़ जिस स्थान पर समाप्त होता है, उस स्थान पर लंगोट के पूर्व 3 इन्च ऊपर घोड़ी या घुड़च होता है, तरब की तारों को स्थान देने हेतु छोटा सा घड़च अथवा घोड़ी की व्यवस्था होती है।[37]

तृतीय भाग दण्ड़ में स्थापित पट्टी है, जिसे भीतर से खोखला कर दण्ड़ में जोड़ा जाता है। इस पट्टी के मध्य में ही तरब के तारों के लिए छिद्र किए जाता है। दण्ड़ के पश्चात् तम्बे के लक्षण इस प्रकार है, कि विचित्र वीणा में दो एक–समान आकार के तुम्बे लगे होते है। तुम्बे का व्यास 46 इन्च कहा है। तुम्बे से भूमि पर स्पर्श होने वाले भाग को 10 इन्च के

---

(36) मिश्र लालमिण/भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–128
(37) महाडिक प्रकाश/भारतीय संगीत के तंत्रीवाद्य/पृ०–42

व्यास में काटा जाता है, और वह गूंज हेतु गुटके लगाए जाते है। तुम्बे के ऊपर के भाग में गुलु लगाया जाता है। जहाँ लकड़ी की नक्काशी की जाती है। यहीं गुलु में पेंच लगे होते है, जिस पर तुम्बे को कसा जाता है। अन्य अंगों के रूप में तार गहन, दाढ, व तारों का वर्णन प्राप्त होता है।[38]

तार गहन– घुड़च के विपरित छोर पर तार गहन होता है। जिससे सभी तार अपनी–अपनी खूंटियों तक जाते है व घुड0च तथा तार गहन की ऊँचाई समान रखी जाती है।

दाढ़– चिकारी के तारों को रखने वाले खांचे को ही दाढ कहा है।

तार– वर्तमान में 10 या 11 तार मुख्य तार माने गए है व 11 से 15 मध्य के मध्य तरब। इसमें मुख्य 6 प्रमुख तार कहे है।

प्रथम तार– इस्पात अर्थात् लोहे का है जो मध्मय स्वर में मिलाया जाता है और इसकी मोटाई तीन या चार नम्बर का तार प्रयोग किया जाता है।

द्वितीय तार– यह तार भी इस्पात का है, परन्तु 6 या 7 नम्बर की मोटाई का है, इसे मध्य सप्तक के षड़ज में मिलाया जाता है।

तृतीय तार– मंद्र सप्तक के मध्यम में मिलाया जाता है, जो 8 या 9 नम्बर का तार है।

चौथा तार– मन्द्र सप्तक का षड़ज है और 21 व 22 नम्बर का तार है जो पीतल निर्मित है।

पंचम तार– अति–मन्द्र पंचम के स्वर में मिलाया जाता है और 18 व 19 नम्बर का तार होता है।

छठा तार– अति–मन्द्र षड़ज का तार है।

वादन हेतु प्रयोग किए जाने वाले मिजराब–बट्टा

इसे बट्टा या मिजराब की सहायता से बजाया जाता है। बट्टा अण्ड़ाकार शीशे द्वारा निर्मित गोलाकार होता है। जिसे बाएं हाथ में धारण कर तारों पर स्पर्श करते हुए वादन करते है।

---

(38) मिश्र लालमणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–128–130

मिजराब धारण करने के नियम इस प्रकार है कि दाएं हाथ की तर्जनी, मध्यमा तथा कनिष्ठा में धारण करते हुए वादन किया जाता है।

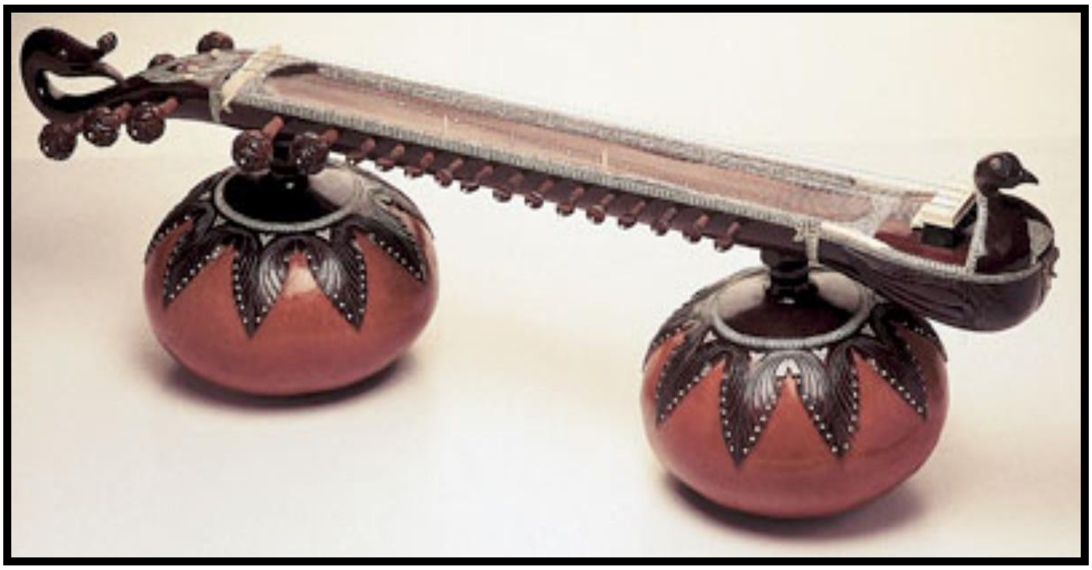

विचित्र वीणा

इस प्रकार एकतन्त्री वीणा जो एक अत्यन्त प्राचीन वीणा है,**(39)** का वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है और साथ ही एकतन्त्री वीणा के वर्तमान स्वरूप को भी प्रकट करने का प्रयास, विभिन्न तथ्यों के आधार पर किया गया है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत विचित्र वीणा का भी परिचय प्रस्तुत किया गया है, विद्वानों द्वारा विचित्र वीणा को ही एकतन्त्री वीणा का वर्तमान रूप स्वीकारा गया है, जो वर्तमान के कुछ परिवर्तनों के साथ प्रचलित है। इसके प्रमुख सुप्रसिद्ध वादक के रूप में स्व० पं० लालमणि मिश्र जी का नाम सर्वविदित है।

5.2.1.7 स्व० पं० लालमणि मिश्र

जीवनवृत्त एक ऐसा माध्यम है, जो व्यक्ति के जीवन के संघर्षों, उपलब्धियों तथा कृत्यों को व्यक्त करता है। इन्हीं को जानने के उद्देश्य से पं० लालमणि मिश्र की जीवन यात्रा को वर्णित करने का प्रयास किया जा रहा है। पं० लालमणि मिश्र का नाम संगीत जगत में सर्व विदित है, संगीत के क्षेत्र से जुड़े प्रत्येक विद्वान, गुणीजन तथा विद्यार्थी सभी पं० लालमणि

(39) शर्मा अनुपमा/आधुनिक तंत्रवाद्यों की जननी वीणा/पृ०–185

मिश्र जी के नाम से परिचित है। वाद्य संगीत हो या कण्ठ संगीत पं० जी को सभी सम्मान के साथ आज भी याद करते है, और पं० लालमणि मिश्र जी द्वारा रचित पुस्तकों के माध्यम से अपने ज्ञान की क्षुधा को शान्त करते है। पं० लालमणि मिश्र जी द्वारा कई पुस्तकों लेखन किया गया जो संगीत की प्रमाणित तथा अधार पुस्तक स्वीकारी जाती है। पं० लालमणि मिश्र जी उच्च कोटि के शास्त्रकार के साथ–साथ उच्चकोटि वादक के रूप में भी जाने जाते थे, वे कई वाद्ययन्त्रों के वादन में पारंगत थे, परन्तु पं० लालमणि मिश्र जी को अपनी विचित्र वीणा के वादक के रूप में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुई।

पं० लालमणि मिश्र जी का मूल निवास कानपुर था, व पं० जी का जन्म भी कानपुर में 11 अगस्त 1924 एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ।**(40)** पं० जी के पिता जी श्री रघुवंशी लाल मिश्र जी थे व माता श्रीमती रानी देवी जी थी। पं० जी कुल तीन भाई थे, जिनमें से जेष्ठ भ्राता जादु की कला में निपुर्ण थे व मंझलें भाई का अपना व्यापार था तथा पं० लालमणि मिश्र जी स्वंय संगीत विद्वान थे। पं० जी के पिता जी की कानपुर स्थित चौक में मिष्ठान भंडार था, परन्तु 1931 के हिन्दु–मुस्लिम दंगों के कारण विवशता वश पूरे परिवार को कलकत्ता जाकर निवास करना पड़ा। संगीत प्रति पं० लालमणि मिश्र जी का लगाव बाल्यावस्था से ही था, पं० गोवर्धनलाल जी, जो कि पं० जी की माता के संगीत गुरू थे, के द्वारा जो भी रचनाएं माता जी को सिखायी जाती, उन्हें स्वंय पं० जी द्वारा स्वतः की माता जी को देखकर सीख गए और हर्मोनियम पर उसका वादन करने लगे, जिसे माता जी के गुरू द्वारा सुना गया और वह अत्याधिक प्रभावित हुए। इस प्रकार माता–पिता द्वारा पं० लालामणि मिश्र जी की रूचि को देखते हुए, संगीत के विद्वानों व गुरूओं के संनिद्धय में शिक्षण आरम्भ हुआ।

पं० गोर्वधन लाल द्वारा आरम्भिक संगीत प्रेरणा व शिक्षा को प्राप्त कर गुप्ता संगीत विद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया, वहाँ पं० जी द्वारा ध्रुपद, धमार आदि गायकी के ज्ञान को प्राप्त किया गया, जिसे स्वामी प्रमोदनंद ब्रह्मचारी तथा पं० कालिका प्रसाद मिश्र से प्राप्त किया दोनों ही महान संगीतज्ञ शकंर भट्ट जी के शिष्य रहे थे। पं० जी ने मात्र 10 वर्ष की अल्प आयु से ही संगीत के जलसों में अपनी प्रस्तुती देना आरम्भ कर दिया था। इसके

---

(40) भारतीय संगीत के अनमोल मणि डॉ. लालमणि मिश्र / कौर डॉ. गुरप्रीत / पृ०–2

पश्चात् उ० मेहदीं हुसैन खाँ व रामकृष्ण मिश्र जी से ख्याल गायकी की शिक्षा प्राप्त की, तबले की शिक्षा श्याम बाबू जी से प्राप्त की, बनारसी ठुमरी का ज्ञान श्री पाण्ड़े जी से तथा श्री बालकृष्ण मिश्र व शुकदेव राय व अमीर अली खाँ द्वारा सितार व कई अन्य वाद्यों का ज्ञान प्राप्त किया और महारत प्राप्त हुयी। 12 वर्ष की आयु में ही पं० जी द्वारा कलकत्ता की एक रिकॉडिंग कम्पनी में सहायक संगीत निर्देशक के रूप में कार्य करने लगे।[41] 1940 में पिता के निधन के पश्चात् कानपूर आगए और बच्चों को संगीत की शिक्षा देने लगे व बाल संगीत विद्यालयों की स्थापना की और कानपुर में ही गांधी संगीत महाविद्यालय की स्थापना की[42], कानपुर के सिविल लाइन्स में आज भी स्थित है। शोधार्थी स्वंय भी इस विद्यालय की छात्रा रही है।

पं० जी को पं० उदयशंकर की नृत्य मंडली में संगीत निर्देशक के रूप में भी नियुक्त किया गया और जिसके साथ पं० जी द्वारा देश और दुनिया के विभिन्न हिस्सों में अपने संगीत की छटा विखेर ने का अवसर प्राप्त हुआ और पश्चात् पं० जी को अखिल भारतीय गंधर्व मण्ड़ल महाविद्यालय बम्बई में रजिस्ट्रार के पद पर नियुक्त किया गया, तत्पश्चात् पं० जी द्वारा कानपुर में अपने स्थापित विद्यालय में प्राचार्य के पद को संभाला और पं० ओकारनाथ ठाकुर के अनुरोध पर पं० जी को पुनः एक बार कानपुर को छोड़ना पड़ा और काशी हिन्दु विश्वविद्यालय में रिडर के पद पर नियुक्त हुए।[43] इस प्रकार पं० जी के सांगीतिक जीवन के साथ–साथ अकादमिक सफर चलता रहा।

पं० जी का विचित्र वीणा के प्रति लगाव तब आरम्भ हुआ, जब पं० जी द्वारा उ० अब्दुल अजीज खाँ जी का मनोहर विचित्र वीणा की प्रस्तुती को सुना गया और पं० जी को यह वाद्य इतनी गहनता से हृदय की तन्त्रियों को झंकृत कर गया, कि पं० जी द्वारा यह अनुभव किया गया कि विचित्र वीणा के माध्यम से गायकी की विशेष तकनीकियों का आनन्द प्राप्त हो सकता है और दृढ़ संकल्प के साथ पं० जी विचित्र वीणा की साधना में लीन हो गए और पाँच वर्षों की तपस्या के पश्चात् सम्पूर्ण जगत में पं० जी का सभी विचित्र वीणा के वादक के रूप में पहचानने लगे और सबसे पहली प्रस्तुती लखनऊ स्थित भातखण्ड़े संगीत

(41) कौर डॉ. गुरप्रीत/भारतीय संगीत के अनमोल मणि डॉ. लालमणि मिश्र/पृ०–23
(42) डॉ० लाल मणि मिश्र एक असाधारण व्यक्तित्व/संगीत/जुलाई/1980/पृ०57
(43) भारतीय संगीत के अनमोल मणि डॉ. लालमणि मिश्र/कौर डॉ. गुरप्रीत/पृ०–53

संस्थान डीम्ड विश्वविद्यालय जिसे पूर्व मैरिस म्यूजिक कालॅज के नाम से जाना जाता था, में दी। 1972 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार विचित्र वीणा के श्रेष्ठ वादक के रूप में प्रदान किया गया।

इस प्रकार बहुमुखी प्रतिभाओं से सुसज्जित व्यक्तित्व रखने वाले पं० लाल मणि मिश्र संगीत के जगत की अद्वितीय मणि है।

नकुल, विपंची आदि वीणाओं का वर्णन–

तन्त्रीद्वयेन नकुलः स्यादन्वर्था त्रितन्त्रिका॥
तन्त्री इभिः सप्तभिश्चित्रा विपञ्ची नवभिर्मता॥110॥
कोणामुलीवादनीया चित्रा तद्वद् विपञ्चिका॥
क्रमादन्येऽङ्गुलीकोणव्यवस्थामूचिरे तयोः॥111॥
चित्रायामगुलीमात्रं विपञ्च्यामुभयंभ परे॥
तन्त्रीणामेकविंशत्या कीर्तिता मत्तकोकिला॥112॥
मुख्येयं सर्ववीणानां त्रिस्थानैः सप्तभिः स्वरैः॥
संपन्नत्वात् तदन्यास्तु तस्याः प्रत्यङ्गमीरिताः॥113॥
करणैश्चित्रयन्त्यस्तास्तस्याः स्युरुपरञ्जिकाः॥[44]

5.2.2 नकुल

नकुल वीणा के विषय में किसी भी विद्वान तथा ग्रन्थकार द्वारा स्पष्ट व विस्तृत रूप से जानकारी प्रस्तुत नहीं की गयी है। हिन्दी शब्दकोश[45] में नकुल का अर्थ स्पष्ट रूप से नेवला परिलक्षित होता है। नकुल वीणा को नकुल, नकुला, नकुली कई नाम में सम्बोधित किया जाता है। जिस प्रकार नकुल शब्द का अर्थ नेवले से समझा जाता है, उसी प्रकार नकुली से अर्थ मादा नेवले से लिया जाता है। संगीत जगत के लगभग सभी ग्रन्थों में नकुल वीणा अथवा नकुली वीणा के विषय में जानकारी प्रस्तुत की है, जिनमें अभिनव भारती के लेखक अभिनव गुप्त साथ ही नारद, नान्यदेव, हम्मीर, पं० शारंगदेव, शुभांकर व माहाराणा कुम्भा इत्यादी समस्त ग्रन्थकारों द्वारा नकुल वीणा को वर्णित किया गया है, परन्तु किसी भी ग्रन्थकार द्वारा विस्तृत जानकारी प्रस्तुत नहीं की गयी है। मात्र महाराणा

(44) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/श्लोक–110–113
(45) बिहारी डॉ० हरदेव/राजपाल हिन्दी शब्दकोश/पृ०–425

कुम्भा द्वारा नकुल वीणा के लक्षणों को वर्णित किया गया है। नकुल वीणा के विषय में जो वर्णन प्राप्त हुआ है उसके अनुसार यह अवश्य ज्ञात होता है कि नकुल वीणा दो तन्त्रियों से युक्त थी–

संगीत रत्नाकर–

तन्त्रीद्वयेन नकुलः।।(46)

इसके अतिरिक्त संगीत मकरन्द, संगीत पारिजात तथा संगीत सुधा जैसे इत्यादी ग्रन्थों में भी यह वर्णन प्राप्त होता है।

संगीत सार

या वीणा में दोयं तार सो नकुली हो।(47)

वाद्य प्रकाश

तन्त्रीद्वयेन नकुलः गणनां च प्रभावती।।(48)

राधागोविन्द संगीत सार के वर्णन के अनुसार

मत्तकोकिला के बजाने को प्रकार सो ही नकुल वीणा में बजाइऐ।(49)

इस प्रकार के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि नकुल वीणा अर्थात् नकुली वीणा दो तन्त्रियों से युक्त वीणा है, जिसका वादन मत्तकोकिला के समान ही अंगुलियों की सहायता से किया जाता है, परन्तु स्वरूप के विषय में स्पष्ट जानकारी नहीं प्राप्त होती है। यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि नकुल वीणा का कोई भाग नेवले के समान सदृश्य हो, जिस कारण इसे नकुल नाम से सम्बोधित किया गया हो।(50) इसी प्रकार का वर्णन लालमणि मिश्र जी द्वारा भी किया गया है कि यदि नकुल वीणा को जमीन पर समान रूप से रखा जाए तो इसकी आकृति में नेवले की छाप स्पष्ट दिखायी देती है, जिसमें पूंछ, तथा सिर देखने को मिलते है।

---

(46) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/श्लोक–110/पृ०–248
(47) संगीत सार/वाद्याध्याय/पृ०–22
(48) वाद्य प्रकाश/तत्वाद्यानि/पाण्डुलिपि
(49) राधागोविन्द संगीतसार/राजा सवाई प्रतापसिहं देव/पृ०–36
(50) महाड़िक प्रकाश/भारतीय संगीत के तन्त्रीवाद्य/पृ०–53

नकुल वीणा

भगवान शिव के नाम के साथ भी नकुल वीणा का वर्णन प्राप्त होता है व भगवान शिव को नकुल तथा पर्वती जी को नकुली कहने का भी वर्णन प्राप्त होता है। यह भी वर्णन किया गया है, कि नकुल वीणा का वादन एकतन्त्री के समान की था व प्रारम्भ में एक तुम्बा व दो तन्त्री ही थे, आवश्यकता के अनुरूप तीन तुम्बों की व्यवस्था की गयी।[51] नकुल वीणा के लक्षण इस प्रकार प्राप्त होते है। नकुल वीणा का दण्ड़ लम्बाई में 13 मुट्ठी माना गया है तथा इसमें दों तन्त्रियों को लगाने की व्यवस्था थी व दण्ड़ के अग्रभाग से लगभग दो मुट्ठी जगह छोड़कर तुम्बा लगाते है। इसके अतिरिक्त सभी लक्षण एकतन्त्री वीणा के समान कहे है। मन्दिरों आदि की प्राचीन मूर्तियों में अंकित विभिन्न रूप वीणा वादन की पुष्टी करते है, जिनमें अंगुलियों की सहायता से वीणा का वादन किया जाता है, परन्तु उन प्राप्त मूर्तियों की सहायता से तारों की संख्या का सटीक अनुमान लगा पाना असम्भव है, क्योंकि चित्रकारों व मूर्तिकारों द्वारा निश्चित स्वरूप का वर्णन किया गया है या नहीं इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है।

इस प्रकार नकुल वीणा के विषय में मात्र इतनी ही जानकारी प्राप्त होती है। डॉ० लालमणि मिश्र के अनुसार तीसरी–चौथी शताब्दीं से 13वीं शताब्दी तक ही रहा, इसके पश्चात् तम्बूरा

(51) संगीतराज / महाराणा कुम्भा / भरतकोश / पृ०–303–304

व स्वरमंडल के प्रचार के कारण यह वाद्य चलन से बाहर होता गया और नकुल वीणा का स्थान अन्य स्वर वाद्यों द्वारा ले लिया गया।

5.2.3 त्रितन्त्री

पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर के अर्न्तगत नकुल, त्रितन्त्री इत्यादि वीणाओं का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। कल्लीनाथ जी द्वारा अपनी संगीत रत्नाकर की टीका के अर्न्तगत त्रितन्त्री वीणा के विषय में वर्णन करते हुए, इसे जन्त्र कहा है।

तंत्र त्रितन्त्रिकेव लोके जन्त्रशब्देनोच्यते।।[52]

तथा सिंह भूपाल जी के द्वारा त्रितन्त्री वीणा को तीन तारों वाली वीणा के रूप स्वीकारा गया है।

त्रितन्त्रिका, अन्वर्था, त्रिभिस्तन्त्रीभिर्युक्ता त्रितन्त्रिका।।[53]

संगीत रत्नाकर के अतिरिक्त भी त्रितन्त्री वीणा का वर्णन कई ग्रन्थकारों द्वारा अपने–अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किया गया है। वाद्य प्रकाश नामक ग्रन्थ में विद्या विलासी द्वारा वर्णित किया गया है, कि यदि त्रितन्त्री वीणा में आलापनी वीणा का मिश्रण करें, दो तुम्बों की व्यवस्था हो तथा तीन तन्त्रियों की व्यवस्था की जाए, जो समस्त सातों स्वरों की उत्पत्ति सम्भव है।

आलापनी त्रितन्त्रि च द्वौ परस्पर एकतौ।
दौ तुम्बो त्रितन्त्रयः च सप्तस्वरा प्रस्फुटाः।।[54]

संगीत रत्नाकर में नकुल आदि वीणाओं के साथ ही त्रितन्त्री वीणा का वर्णन प्राप्त होता है।[55]

सुधा कलश में भी त्रितन्त्री वीणा के नाम का उल्लेख प्राप्त होता है।

एकतन्त्री द्वितन्त्री च त्रितन्त्री सप्ततन्त्रिका।।[56]

---

(52) संगीत रत्नाकर(अड्गर)/कल्लीनाथ टीका/शास्त्री पं० सुभ्यमणयम/श्लोक–110
(53) संगीत रत्नाकर(अड्गर)/सिंह भूपाल टीका/वाद्याध्याय/श्लोक–110
(54) वाद्य प्रकाश/पं० विद्या विलासी/श्लोक–28
(55) स्यादन्वर्था त्रितन्त्रिका/चौधरी सुभद्रा/पं० शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–6/श्लोक–110

हम्मीर देव जी द्वारा त्रितन्त्री का वर्णन नकुल आदि वीणाओं के ही साथ प्रस्तुत किया गया है। राणा कुम्भा द्वारा संगीत राज में नकुल वीणा के साथ–साथ त्रितन्त्री वीणा का भी वर्णन किया है, और कहा है, कि त्रितन्त्री तीन तन्त्रियों से युक्त है, जिस पर लम्बाई में दो मुट्ठी का स्थान छोड़कर तुम्बा स्थापित करना चाहिए व अन्य समस्त लक्षणों को एकतन्त्री के समान ही कहा व त्रितन्त्री का वादन कोण की सहायता द्वारा होता है तथा दण्ड़ की लम्बाई ग्याराह मुट्ठी कही है।

नकुलात्रितन्त्रयौ स्यातां द्वित्रितन्त्रीकले क्रमात।
दण्ड़ाग्रतो तयोस्त्यक्ता मुष्टि द्वंटूमतत परम्।।

तुम्बस्य बन्धनं कार्य मेकतन्त्रीवदेतयो।
कार्य कोणेन विदुषा केचिदत्र प्रचक्षते।।
त्रितन्त्रिका या मुद्यिष्टामेकादशकमुष्टयः।।[57]

त्रितन्त्री

त्रितन्त्री वीणा के विषय में सभी ग्रन्थकारों द्वारा वर्णन प्रस्तुत किया गया है, परन्तु एस० एन० टैगोर द्वारा किए गए वर्णन को समस्त प्रस्तुत वर्णनों में स्पष्ट तथा सर्वसम्मती से परिपूर्ण स्वीकारा गया है। त्रितन्त्री वीणा का अध्ययन करते हुए, वीणा के त्रितन्त्री को कच्छपी वीणा की उपमा दी है। एस० एन० टैगोर के द्वारा कहा गया है कि त्रितन्त्री व कच्छपी वीणा साम्य गुण से युक्त है, मात्र तुम्बे में फर्क है, यदि लौकी के तुम्बे की जगह लकड़ी द्वारा निर्मित तुम्बे का प्रयोग किया जाए व तीन तन्त्रियों की सहायता से वादन किया जाए तो जितनी भी वादन क्रियाए कच्छपी वीणा पर प्रस्तुत होती है व सभी त्रितन्त्री

---

(56) संगीतोपनिषत्सारोद्धार / अध्याय–4 / श्लोक–11
(57) संगीतराज / राणा कुम्भा / भरत कोश / पृ०–303–304

वीणा पर करना भी सम्भव हो जाएगा, परन्तु त्रितन्त्री की आकृति कच्छपी वीणा से कुछ छोटी है, जिस कारण त्रितन्त्री वीणा पर राग–रागनियों को प्रस्तुत कर पाना कुछ मुश्किल होगा। त्रितन्त्री का मुख्य तार जो लोहे का होता है, उसे मध्यम स्वर में मिलाया जाता है। द्वितीय तार पीतल का प्रयोग किया जाता है, इसे मन्द्र सप्तक के षड़ज स्वर में निबद्ध किया जाता है तथा अन्तिम अर्थात् तीसरे तार को अति मन्द्र पंचम में मिलाया जाता है, यह तार भी पीतल का ही प्रयोग होता है।

इस प्रकार त्रितन्त्री की तन्त्रियों की व्यवस्था का वर्णन प्राप्त होता है। त्रितन्त्री की वादन शैली का वर्णन करते हुए कहा है कि कच्छपी वीणा के समान ही त्रितन्त्री का वादन प्रस्तुत किया जाता है। ग्रीस के एक प्राचीन वाद्य हीर मिसेर लायर से भी त्रितन्त्री वाद्य में समानता प्राप्त होती है, परन्तु तन्त्रियों को मिलाने व्यवस्था में कुछ अन्तर अवश्य प्राप्त होता है।[58] कल्लीनाथ जी द्वारा अपनी संगीत रत्नाकर की टीका में त्रितन्त्री का स्पष्ट वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित जितने भी वाद्य है, उनका स्वरूप कल्लीनाथ जी के काल तक आते–आते किस प्रकार व कितने परिवर्तित हुए और कितने वह प्रचलित थे। कल्लीनाथ जी द्वारा वर्णित त्रितन्त्री वीणा जो, पं० शारंगदेव जी के काल में भी त्रितन्त्री के रूप में विद्यमान थी को ही वर्तमान युग में सितार, तम्बूरा के रूप में जाना गया। त्रितन्त्री का वर्णन करते हुए कहा है कि–

तत्र त्रितन्त्रिकैव लोके जन्त्रशब्देनोच्यते।[59]

कल्लीनाथ जी द्वारा कहा गया है, कि त्रितन्त्री को ही लोकभाषा अर्थात् समान जनमानस द्वारा में जन्त्र शब्द से सम्बोधित किया जाता है। त्रितन्त्री के अन्य नामों का भी वर्णन प्राप्त होती है, जिसमें कर्नल जैरर द्वारा इसे यन्त्र कह सम्बोधित किया गया है।[60] अइन–ए–अकबरी में अबुल फज़ल द्वारा भी यन्त्र नाम का वर्णन किया गया है।[61] परन्तु अबुल फज़ल तथा राणा कुम्भा के द्वारा जो वर्णन त्रितन्त्री के विषय में प्राप्त होता है। दोनों आपस में समानता के साथ–साथ भिन्नता भी रखते है क्योंकि अबुल फज़ल द्वारा जिस

(58) यंत्र कोश(बांग्ला)/टैगोर एस० एन०/पृ०18–19
(59) संगीत रत्नाकर/कल्लीनाथ टीका/वाद्याध्याय/पृ०–248
(60) अइन–ए–अकबरी/अबुल फज़ल/भाग–3/पाद टिप्पणी/पृ०–268
(61) अइन–ए–अकबरी/अबुल फज़ल/भाग–3/पाद टिप्पणी/पृ०–268

हिन्दू बीन का वर्णन किया गया है, वह राणा कुम्भा की त्रितन्त्री वीणा से आंशिक रूप से मेल तो खाती है, परन्तु कह पाना मुश्किल है, क्योंकि कोई निश्चित तथ्य प्राप्त नहीं होते है कि मुगलकालीन हिन्दू बीन त्रितन्त्री वीणा का ही रूप थी, क्योंकि बीन एक प्रथक व स्वतन्त्र प्रणाली का भाग थी, जिस त्रितन्त्री वीणा का वर्णन एस० एन० टैगोर द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

राणा कुम्भा की त्रितन्त्री से भी भेद रखती है, क्योंकि एस० एन० टैगोर द्वारा त्रितन्त्री को कच्छपी वीणा के समतुल्य स्वीकारा है। इन तथ्यों के आधार पर प्रकाश महाड़िक द्वारा वर्णन किया गया है कि त्रितन्त्री वीणा मध्यकाल के आरम्भ में लुप्त हो चुकी थी। यदि कल्लीनाथ की टीका को ध्यान में रखा जाए, तो पं० शारंगदेव जी की त्रितन्त्री वीणा का विकसित तथा परिवर्तित रूप सितार तथा तम्बूरा माना गया है। इस प्रकार पं० लालमणि मिश्र द्वारा स्वीकारा गया है कि त्रितन्त्री वीणा का विकसित रूप सितार तथा तम्बूरा है।[(62)] समस्त तथ्यों के आधार पर यह स्वीकारा जा सकता है कि त्रितन्त्री वीणा वर्तमान में भी प्रयोग होने वाली वीणा है, जो नाम परिर्वतन तथा वादन की सुविधा के साथ विद्यमान है।

5.2.3.1 यन्त्र

सामान्य भाषा में यंत्र शब्द का अर्थ वाद्य से लिया जाता है, परन्तु मध्यकाल में प्राप्त शास्त्रों व ग्रन्थों के उल्लेख से ज्ञात होता है, कि यन्त्र नामक वाद्य भी रहा है।

इतहु बाजे बाजन लागे, दुन्दुभि घौंसा गाजे।
रूंज मुरज आवज सारंगी, यन्त्र किन्नरी साजे।।

परमानन्द दास

यन्त्र वाद्य का वर्णन कृष्णदास द्वारा रवाब के वर्णन में तथा पदमावत् के कुछ पदों में देखने को मिलता है।

फलन मांक्ष ज्यों करूई, तोमरी रहत घुरे पर ड़ारी।
अब तो हाथ परी यन्त्री के बाजत राग दुलारी।।

---

(62) मिश्र पं० लालमणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–43

इस प्रकार के पदों के माध्यम से सूरदास जी द्वारा यन्त्र वादकों को यन्त्री कहा है। आरम्भिक काल में प्रयोग होने वाली वीणाओं में तुम्बें देखने को नहीं मिलता था व सबसे प्रथम तुम्बें का उपयोग किन्नरी वीणा में देखने को मिलता है। इसके पश्चात् मध्यकाल में त्रितन्त्री के आधार पर निर्मित यन्त्र वाद्य में तुम्बा देखा गया है। आइन–ए–अकबरी के आधार पर श्री जयराज गुप्ता जी द्वारा यन्त्र वाद्य के आकार–प्रकार का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, कि लगभग एक गज लम्बा दण्ड़ होता है, जिसे निचले तथा ऊपरी भाग में तुम्बे को स्थापित किया जाता है, तथा सोलाह पर्दों की व्यवस्था दण्ड़ पर की जाती है, जो अपने स्थान के आगे–पीछे वादक द्वारा अपनी सुविधानुसार व्यवस्थित किए जा सकते है, तथा यन्त्र में कुल पाँच तन्त्रियों को लगाया जाता था।[(63)] यन्त्र वाद्य का प्रचार–प्रसार व प्रयोग 14वीं शताब्दी के आस–पास देखने को मिलता है व संगीत रत्नाकर के टीकाकार कल्लीनाथ जी द्वारा भी कहा गया है कि त्रितन्त्री को समान भाषा में यन्त्र अथवा जन्त्र वाद्य कहा जाता है।

तत्र त्रितन्त्रिकं लोके जन्त्रशब्देनोच्यते।।[(64)]

कल्लीनाथ जी समय में यन्त्र वाद्य में तीन तन्त्रियों का प्रयोग होता था। बाद में तीन के स्थान पर पांच तन्त्रियों का प्रयोग होने लगा था। इस प्रकार त्रितन्त्री को मध्यकाल में यन्त्र नाम से जाना जाने लगा था, जो वर्तमान में तम्बूरे तथा सितार का जन्मदाता कहा गया है।

5.2.3.2 सितार

सितार शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा में **''स''** धातु से बना है। सितार का संधि–विच्छेद देखे तो **''सित्आर''** शब्द प्राप्त होते है, जिसका अर्थ है, बन्धनों द्वारा जो चारो तरफ से आनन्दित करता है।[(65)] सितार के विषय में सभी विद्वानों के अलग–अलग मत है। सितार भारतीय संगीत का एक लोकप्रिय तन्त्री वाद्य है। प्राचीन तन्त्री वाद्यों में जो स्थान वीणा का

(63) संगीत / संगीत कार्यलय हाथरस / 1987 / पृ०–32
(64) संगीत रत्नाकर / वाद्याध्याय / टीकाकार–कल्लीनाथ / पृ०–248
(65) नारायण पं० जगदीश / सितार सिद्धांत (भाग–1) / पृ० 8

था, वही स्थान आधुनिक काल में सितार का है। ''सितार'' न केवल भारत बल्कि देश–विदेश में भी अत्याधिक पसंद किया जाने वाला वाद्य है।

सितार एक लम्बे इतिहास के साथ वर्तमान तक पहुँच है, इतिहास के गर्भ में सितार के विकास का क्रम छिपा है। सितार का उद्भव किस प्रकार हुआ, यह वर्तमान में भी हो रहे, शोध का प्रश्न है, क्योंकि वाद्यों की उत्पत्ति तथा उसके विकास के सम्बन्ध में सबसे कम शोध कार्य किए गए है। अधिकतर शोध कार्य नवीन रचनाओं, तकनीकों, राग, जाति तथा सांगीतिक विद्वानों की आत्मकथा पर ही आधारित रहें है। जिस कारण वाद्यों के असितत्व का ज्ञान नहीं हो पाया है। सितार को कुछ विद्वानों व संगीतज्ञों द्वारा विदेशी वाद्य समझा गया व इसे ईरान व फारस के आक्रान्ताओं के साथ भारत में आने की बात कही गयी, परन्तु इस तथ्य को स्वीकारा जाना अधिक वस्तुपरक नहीं प्रतीत होता है।

सितार के अविष्कारक के सम्बन्ध में एक सर्वमान्य तथ्य यह माना गया है, कि अमीर खुसरो द्वारा सितार का अविष्कार किया गया, जिसका सर्मथन भी कई संगीतविद्ों द्वारा किया गया। साथ ही अमीर खुसरो द्वारा तबले के अविष्कार की भी बात कही गयी। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, कि अमीर खुसरो एक महान संगीतज्ञ, कवि तथा राजनीति में पारंगत थे। अमीस खुसरो द्वारा खड़ी बोली में कई सूक्तियों की भी रचना की गयी। अमीर खुसरो को तबला या सितार के जनक के रूप में इन आधारों पर स्वीकार लेना उचित नहीं प्रतीत होता है।**(66)** पं० लालमणि मिश्र जी द्वारा भी कहा गया है कि जिस भी संगीतज्ञ की स्मृति में जो भी कार्यक्रम आयोजित होते है। उनमें उन्हीं विधाओं की प्रस्तुतीकरण होता है, जिनमें वह स्वयं पारंगत होते है। जैसे प्रतिवर्ष तानसेन की याद में भी ध्रुपद सम्मेलन का आयोजन प्रति वर्ष किया जाता है, परन्तु आज ध्रुपद गायकी का प्रचार अधिक न होने के कारण वहाँ कुछ–कुछ ख्याल गायकी को भी प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष उस का आयोजन अमीर खुसरों की मज़ार पर कव्वालियों का कार्यक्रम किया जाता है।

अबुल फज़ल द्वारा भी अमीर खुसरों को कौल व कलवाना नामक विधाओं का जनक स्वीकारा गया है। आइन–ए–अकबरी में सितार, तबला या ख्याल गायकी जैसी किसी भी

---

(66) मिश्र डॉ रमावल्लभ / सितार के अविष्कार का इतिहास और विकास के चरण / पृ०–17,18

विधा का कोई भी वर्णन प्रस्तुत नहीं किया गया है[(67)] व अन्य कुछ मुस्लिम ग्रन्थों के आधार पर भी अमीर खुसरो के सितार के अविष्कारक होना नहीं पुष्टि किया जा सकता है। 1838 में रचित ''म्यूज़िक ऑफ हिन्दुस्तान'' में पहली बार केप्टन विलर्ड द्वारा अमीर खुसरों को सितार वाद्य के अविष्कारक होने की बात कही गयी है। सितार वाद्य को मध्यकाल में अलग पहचान दिलाने का श्रेय मसीत खाँ, जो कि दिल्ली के थे और मसीत खाँ द्वारा ही मसीतखानी गत का अविष्कार किया गया, तथा लखनऊ के गुलाम रज़ा खाँ द्वारा रज़ाखानी गत का निर्माण किया गया, जिसके प्रचार द्वारा सितार को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ। मध्यकाल में सितार को असितत्व में लाने के लिए गुलाम रज़ा खाँ तथा मसीत खाँ द्वारा कड़ी मेहनत की गयी, जिसके फलस्वरूप ही सितार को अपना उच्च स्थान प्राप्त हुआ।[(68)] रबाब बीन जैसे एकल वाद्यों के रूप में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों के समकक्ष स्थान प्राप्त हुआ। सितार को पूर्ण रूप से तानसेन के वशंजों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया, परन्तु सितार की शिक्षा को बढावा दिया। उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रस्तुत किए गए, तथ्यों को स्वीकार करना एक कठिन कार्य है, कि उत्पत्ति मुस्लिम शासकों के राज्य संगीतज्ञों द्वारा की गयी, जैसे अमीर खुसरों आदि, परन्तु सितार के प्रचार–प्रसार के सम्बन्ध में अवश्य ही मुस्लिम संगीतज्ञों का बडा योगदान रहा है।[(69)]

शोधार्थी का ऐसा माना है, कि खोज एक कठिन कार्य है, क्योंकि इससे उत्पन्न होने वाले नवीन प्रश्न व तर्क विवादों को भी जन्म देते है और उन्हीं विवादों के बचने हेतु चले आ रहे मतों पर तर्क प्रस्तुत नहीं किए जाते है। इसी कारण वश वर्षों से चली आ रही, इस भ्रान्ति को पूर्णतः स्वीकारा गया है कि अमीर खुसरों द्वारा ही सितार का अविष्कार किया गया। इस तथ्य के तर्क में यह कहा गया कि वीणा के चार तारों में से एक तार को हटाकर तीन तारों वाले वाद्य का अविष्कार किया गया, जिसे सितार कहा जाता है, क्योंकि फारसी भाषा के अर्न्तगत सह का तात्पर्य तीन से होता है, जिस कारण यह वाद्य आरम्भ में सहतार और बाद में सहतार बिगड़ते–बिगड़ते सितार बना व बाद के संगीतज्ञों द्वारा आवश्यकता के अनुसार तन्त्रियों के संख्याओं में परिवर्तन होते रहे।

---

(67) आइन–ए–अकबरी / अबुल फज़ल / भाग–3 / पृ०–268–269
(68) मिश्र लाल मणि / भारतीय संगीत वाद्य / पृ०–54
(69) मिश्र लाल मणि / भारतीय संगीत वाद्य / पृ०–54

इस प्रकार सितार के फारसी व अमीर खुसरों के संदर्भ में तथ्य प्रस्तुत किए गए। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि भारतीय संस्कृति समाज आदि पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव नहीं है, परन्तु वह प्रभाव कितना है, यह खोज का विषय अवश्य है। इस बात का खण्ड़न नहीं किया जा सकता, कि सितार नामक वाद्य ईरान में प्रयुक्त नहीं होता है, क्योंकि ईरानी संस्कृति के अन्र्तगत इकतार, दुतार, सितार चौतार इत्यादि तन्त्रियों से युक्त वाद्यों का प्रयोग लम्बे समय के चलता आ रहा है, परन्तु भारतीय सितार ईरानी सितार से काफी हद तक भेद भी रखता है। इस प्रकार सितार वाद्य के विषय में कई मतों का वर्णन किया गया है। पं० लाल मणि मिश्र के द्वारा वर्णित विशेषताओं के आधार पर सितार वाद्य की मुख्य तीन विशेषताएं उसके पूर्णतः भारतीय वाद्य होने के संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए कही है।[(70)] सर्वप्रथम घुड़च को वर्णित करते हुए कहा है, कि घुड़च का प्रयोग भारतीय वाद्य पद्धित के अन्र्तगत अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आ रहा है। आरम्भ में यह घुड़च लोहे या ताम्र पत्रिका द्वारा निर्मित होता था, जो चपटा होता था। इस प्रकार के घुड़च का प्रयोग संगीत रत्नाकर के समय तक हुआ व मध्यकाल में घुड़च के स्वरूप में कुछ परिवर्तन आरम्भ हो गए व लोहे व ताम्र पत्रिका की जगह हांथी दाँत व ऊँट की हड़्डी उपयोग की जाने लगी, जिससे उसकी जवारी खोलना भी आसान होने लगा व झंकार भी रंजकता से परिपूर्ण होने लगी। इस प्रकार के वाद्यों में वादन हेतु, मिजराब आदि द्वारा होता है। गज वाद्यों में भी समान रूप से घुड़च का प्रयोग होता है, परन्तु सितार की घुड़च से भिन्न होता है।

इसी प्रकार द्वितीय विशेषता के रूप में सारिकाओं का वर्णन किया है। सारिकाओं की व्यवस्था का वर्णन के आधार पर ज्ञात होता है, कि विश्व की अन्य सांगीतिक व्यवस्था में नहीं प्राप्त होती है। इसी क्रम में तीसरी विशेषता के रूप में चिकारी का प्रयोग देखने को मिलता है। जिसमें प्रत्येक स्वर अघात के साथ षड़ज स्वर का चिकारी के रूप में रंजकता उत्पन्न करता रहता है। इस प्रकार इन सभी आधारों पर सिद्ध होता है, कि सितार वाद्य की सम्पूर्ण व्यवस्था प्राचीन वीणाओं के आधार पर है, इस सभी तथ्यों को अस्वीकार करके सितार वाद्य के जन्म की भारतीय पृष्ठभूमि पर प्रश्न उचित नहीं प्रतीत होता है। श्री उमेश

(70) मिश्र लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–54–61

जोशी द्वारा भारतीय संगीत का इतिहास में वर्णित किया है[71] कि सितार का जन्म समुद्रगुप्त के काल में हुआ, क्योंकि समुद्रगुप्त का काल इतिहास में भारतीय संस्कृति के स्वर्ण युग के रूप में जाना जाता है।

समुद्रगुप्त का काल दूसरी सदी से पंचवी सदी के मध्य का माना गया है, परन्तु प्राप्त ग्रन्थों में किसी भी स्थान पर सितार के स्वरूप व नाम का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। इसी प्रकार उत्पत्ति के संबंध में एक तथ्य यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आधुनिक विद्वान श्री प्रज्ञानन्द स्वामी जी द्वारा सितार के उत्पत्ति चित्रा वीणा से स्वीकारी गयी।[72] पं० जगदीश नारायण पाठक द्वारा सितार की उत्पत्ति परिवादनी वीणा द्वारा मानी गयी है।[73] इस प्रकार परिवादनी या चित्रा वीणा द्वारा सितार की उत्पत्ति के पीछे दोनों विद्वानों द्वारा तन्त्रियों की संख्या के आधार पर सितार वाद्य की उत्पत्ति का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। महाराष्ट्र में प्रचलित सितार वाद्य को पं० ओमकार नाथ ठाकुर द्वारा सितार वाद्य के रूप में वर्णित किया गया है, कि यही वाद्य बाद में सितार कहलाने लगा। जो सप्ततन्त्री वीणा द्वारा निर्मित वाद्य था।

इन सभी तथ्यों के मध्य एक तथ्य यह भी प्राप्त होता है, कि सितार वाद्य की उत्पत्ति त्रितन्त्री वीणा के आधार पर हुयी है। त्रितन्त्री वीणा का मुख्य रूप से प्रचार–प्रसार 13वीं–14वीं शताब्दी तक ही देखने को मिलता है और यदि सितार वाद्य को देखा जाए तो सितार वाद्य 17वीं से 18वीं शताब्दी से अपनी पहचान स्थापित करना आरम्भ किया था। 13वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी के मध्य का यह एक लम्बा काल है, जिस कारण त्रितन्त्री द्वारा सितार के जन्म के तथ्य को सिद्ध करना कठिन कार्य प्रतीत होता है। संगीत रत्नाकर में पं० शारंगदेव जी द्वारा किया गया है व संगीत रत्नाकर के टीकाकार कल्लीनाथ जी द्वारा इस त्रितन्त्री वीणा को जन्त्र के रूप में वर्णित किया गया है, जिससे यह ज्ञात होता है कि त्रितन्त्री का परिवर्तित रूप यंत्र या जन्त्र के रूप में प्रचलित था, जिसके नाम का उल्लेख कृष्ण भक्ति के कवियों द्वारा पदों में किए जाने का वर्णन प्राप्त होता है। जन्त्र वाद्य का उल्लेख अबुल फज़ल द्वारा भी किए जाने का वर्णन प्राप्त होता है। अबुल फज़ल द्वारा

(71) भारतीय संगीत का इतिहास/जोशी उमेश/पृ०–144–145
(72) Historical Study Of Indian Music/Pragyanand Swami/pg.-116
(73) सितार सिद्धन्त/पाठक जगदीश नारायण/भग–1/पृ०–6

जन्त्र को वर्णित करते हुए कहा गया है कि जन्त्र पांच तन्त्रियों से युक्त वाद्य है, जिसमें सोलह सारिकाओं को स्थापित किया गया है।[74]

सितार का जन्म के विषय में एक मतानुसार मध्यकालीन संगीत रसिक मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी कलाकारों में सदारंग संगीत शिरोमणि थे, जिनका वास्तविक नाम नेमत खां था और ये निर्मोल खां के पुत्र थे। सदारंग के छोटे भाई भी संगीत मर्मज्ञ थे। उस काल के लेखक दरगाह कुली खां जी ने लिखा है, कि सदारंग के छोटे भाई ने एक विचित्र वस्तु जो तीन तार का बाजा है, उस पर राग–रागनि प्रस्तुत करता है[75], तब इसका नामकरण नहीं हुआ था। तब इसका नामकरण नहीं हुआ था, परन्तु यही वाद्य सितार था। कुली खां ने सारंगी, रबाब, बीन, पखावज, ढोलक, धमधमीयाँ, घड़ा जैसे वाद्यों की चर्चा की है, किन्तु सितार व तबला वादन की कोई चर्चा नहीं की है। कहा जाता है, कि नाम साम्य होने के कारण खुसरो खां को अलाउद्दीन कालीन अमीर खुसरो समझ बैठे, कहा जाता है कि खुसरो खाँ[76] ने ही सितार को जन्म दिया।[77] इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, एस०एन० टैगोर द्वारा रचित यन्त्र क्षेत्र दीपिका का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है, कि टैगोर जी द्वारा भी पांच तन्त्रियों व सोलह सारिकाओं वाले सितार का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पं० लालमणि मिश्र द्वारा भी त्रितन्त्री वीणा को अधुनिक रूप में तम्बूरा तथा सितार के रूप में प्राप्त होता है। वर्तमान संगीत के तम्बूरे के वर्णन का अध्ययन करने पर तम्बूरे के अनिबद्ध तथा निबद्ध रूप में सितार को वर्णित किया गया है। इस प्रकार आइन–ए–अकबरी, संगीत पारिजात, संगीत सार के अर्न्तगत त्रितन्त्री के संदर्भ में, जो वर्णन प्राप्त होता है, उसके आधार पर सितार व तम्बूरा का वर्णन त्रितन्त्री वीणा के संदर्भ किसी भी प्रकार से असत्य प्रतीत नहीं होता है। त्रितन्त्री द्वारा हुए विकास के क्रम को देखकर यह ज्ञात होता है कि तम्बूरा सितार का मुख्य रूप से विकास गायन के संदर्भ में हुआ, जो समय के साथ–साथ सेनिया घराने के वंशजों द्वारा 18वीं शताब्दी के

(74) मिश्र लाल मणि / भारतीय संगीत वाद्य / पृ०–56
(75) मिश्र रमावल्लभ / सितार के अविष्कार का इतिहास और विकास के चरण / पृ०–19
(76) आचार्य ब्रहस्पति / खुसरो तानसेन और अन्य कलाकार / पृ०99
(77) बसंत / संगीत विशारद / पृ०–350–351

उत्तरार्ध में सितार वादन की विशेष शिक्षा का कार्य अरम्भ हुआ। धीरे–धीरे वीणा व गायन में प्रयुक्त होने वाले प्रत्येक आलाप सितार वादन में प्रयोग होते है।

सितार परंपरिक वाद्य होने के साथ ही सबसे अधिक लोकप्रिय है और सितार ऐसा वाद्य यंत्र है, जिसनें पूरी दुनिया में हिन्दुस्तान का नाम लोकप्रिय किया। सितार को भारत का राष्ट्रीय वाद्य यंत्र होने का गौरव भी प्राप्त है। सितार बहु आयामी साज होने के साथ ही एक ऐसा वाद्य यन्त्र है, जिसके जरिए ह्रदय की भावनाओं को सहज रूप से प्रकट किया जा सकता है। इस प्रकार सितार के मूल रूप से भारतीय त्रितन्त्री वीणा के आधार पर होने की बात शोधर्थी को अधिक वस्तुनिष्ठ प्रतीत होती है। सितार को भारतीय वाद्य के रूप में ही स्वीकारा जाना चाहिए।

5.2.3.2.1 सितार वाद्य का स्वरूप

यदि सितार के स्वरूप को देखा जाये तो, वर्तमान में दो प्रकार के सितार देखने को मिलते है, जिनमें एक तो तरब की वाले सितार होते है और दूसरे वह जो सादे होते है। यह भिन्नता समय के साथ हुए बदलाव से हुई है। तरब के तार लगने से सितार की मिठास में अधिक वृद्धि हो गई है। इसी प्रकार आगे सितार के भागों की जानकारी दी जा रही है।[78]

तुम्बाः– सितार के नीचे का भाग जो गोल लौकी का होता है, वह तुम्बा कहलाता है। यह भाग जंगली लौकी या कद्दू को अन्दर से खली कर के बनाया जाता हैं।

तबलीः– तुम्बे के ऊपर का ढक्कन जिस पर ब्रिज या घुरच जमी रहती है, उसको तबली कहते है।

घुरचः– तबली के ऊपर लकड़ी या हांथी दांत की बनी हुई 12 से 14 इंच चौड़ी चौकी होती है, जिस पर तारों को रखा जाता है।

कील या लंगोटः– तुम्बे के नीचे के भाग में जिस वस्तु से सितार के तारों को बंधा जाता है। यह टेढ़े आकार की कील के समान होता है, तार को एक ओर से खूंटियो तथा दूसरी ओर इस कील से बंधे जाते है।

---

(78) महाडिक प्रकाश/भारतीय संगीत के तंत्रीवाद्य/पृ०–105

डांडः— यह सितार में लम्बाई के आकार की लकड़ी का बना हुआ भाग होता है, जो लकड़ी को खोखला करके बनाया जाता है। यह 34 इंची लम्बा और तीन से साढ़े तीन इंची चौड़ा होता है। इसको भाग में देख सकते है, जिसमें एक भाग तो वह है, जो लकड़ी को हल्का सा खली कर के उसके खूंटी लगाने के सुराख किये जाते है और दूसरा वह जो इस खली स्थान को ऊपर से ढ़कने का कार्य करता है। डांड पर सितार के पर्दों को बंधा जाता है।

गुल या गुल्लूः— यह डांड और तुम्बे को आपस में जोड़े रहने वाला भाग है।

खूंटियांः— डांड में सुराख कर के चाभियों के आकार की लगी होती है, इनमे सितार के तार को बंधा जाता है और इसी के माध्यम से तारों सुर भी किया जाता है। जिनमें 7 बड़ी मुख्य तारों की खुंटिया और 11 तरब के तारों की खुटियां होती है।

मनका :— सितार के तार को मिलाने के लिए उसमें जो मोती पिरोई जाती है। उसे मनका कहते है।

पर्दा :— सितार के तार पर पीतल या लोहे की बनी सलाइयों को डांड पर धागे या तांत से बांधा जाता है। इनकी संख्या 16—24 तक होती है, परन्तु इसकी संख्या का निर्धारण मुख्यता कलाकार अपनी वादन शैली के अनुसार ही करता हैं।

अटी :— सितार के ऊपरी सिरे पर हांथी दांत की बनी दो पट्टियाँ होती है। पहली पट्टी पर तार रखे जाते है। उसको अटी कहते है।

तार :— वर्तमान में सितार में 7 तार लगे होते है। सितार के पहले तार को बाज का तार कहा जाता है और यह लोहे का होता है, जिसे मध्य सप्तक के मध्यम स्वर में मिलाया जाता है। इसके बाद दो तार जोड़ी के तार होते है, जो कि पीतल के होते है, जिन्हें मन्द्र षड्ज स्वर में मिलाये जाता है। इसे खरज का तार भी कहा जाता है। इसके बाद की तन्त्री को गंधार स्वर में तार मिलाया जाता है, जो कि पीतल का होता है। इसके पश्चात् तार इस्पात को पंचम स्वर में मिलाया जाता है। अन्त में चिकारी के दो तार होते है।

जिसमें पहली चिकारी मध्य षड्ज और दूसरी चिकारी तार षड्ज में मिलायी जाती है। जिन्हें क्रमशः बडी चिकारी व छोटी चिकारी नाम से पुकारा जाता है।(79)

तरब :– अच्छे सितारों में पर्दों के नीचे कुछ पतले तार होते है, जिसके लिए अलग–अलग छोटी–छोटी खूंटियां तथा छोटा घुरच होता है। जिस पर यह तरब की तारे होती है। इनकी संख्या लगभग 11 या 13 होती है(80) तथा इन्हें राग से स्वरों के अनुसार ही मिलाया जाता है। तरबदार सितार रंजकता से परिपूर्ण होता है, और अपनी मधुरता द्वारा श्रोताओं के अन्तःकरण को प्रभावित भी करता है।(81)

5.2.3.2.2 सितार में प्रयुक्त होने वाली तकनीकी परिभाषायें(82)

1. गमक– कई ग्रंथों में शोध की परिभाषा इस प्रकार दी गई है।–

स्वरस्य कंपोगमकः स्त्रोतृचित्तं सुखावः

"संगीत रत्नाकर"

स्वरों द्वारा किया गया, ऐसा कंपन जो श्रोता के चित्त को सुख की प्राप्ति कराये। गमक से स्वरों में कम्पन उत्पन्न करने का कार्य किया है। जिससे सौन्दर्यात्मक पक्ष की अभिव्यक्ति प्रस्तुत की जाती है। गमक के 15 प्रकार संगीत रत्नाकर में बताये गए है। जिनमें से कुछ प्रकार ही अधिक देखने को मिलता है और उनमें से ही कुछ का प्रयोग सितार में भी किया जाता है।

2. गिटकरी– स्वरों को समूह में एकत्र कर उनका वादन करना गिटकरी कहलाता है। अर्थात चार स्वरों को एक साथ शीघ्रता से बजाया जाये। एक ही अघात में इसका वादन होता है।

---

(79) महाडिक प्रकाश/भारतीय संगीत के तंत्रीवाद्य/पृ०–98–104
(80) महाडिक प्रकाश/भारतीय संगीत के तंत्रीवाद्य/पृ०–105
(81) बसंत/संगीत विशारद/पृ०–353–355
(82) श्रीवास्तव हरिशचन्द्र/राग परिचय/156–162

3. जमजमा–जब दो अंगुलियों की सहायता से एक के बाद एक स्वर पर आते–जाते हुए, हिलती हुई सी ध्वनि उत्पन्न होती है। उसे जमजमा की संज्ञा दी जाती है, यह उर्दू भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ योजना से है अर्थात योजनानुसार स्वरों को चलाना।

4. खटका–स्वर समूहों को अलंकृत करना। इसमें आगे–पीछे के स्वरों का कण लगते हुए प्रयोग किया जाता है, परन्तु यह कण के समान कोमलता लिए हुए नहीं होता है। खटके का अर्थ झटका, भय आदि से भी है।

5. कम्पन–स्वरों को कम्पित करते हुए, वादन किया जाता है। इसमें स्वरों को उनके स्थान पर ही आंदोलित किया जाता है। कम्पन द्वारा स्वर और राग के सौन्दर्य में वृद्धि की जाती है।

6. कण–कण का अर्थ स्पर्श स्वर से भी लगाया जाता है, अर्थात किसी स्वर को गाते बजाते समय आगे या पीछे के स्वर को छुते हुए, अलगे स्वर तक जाया जाता है।

7. घसीट– इसके नाम से ही इसका अर्थ स्पष्ट है– इसके प्रयोग से घर्षण से है, जो कि तार पर एक साथ तेजी से तीन–चार और उससे भी अधिक स्वरों को अंगुली की सहायता से बजाना अर्थात एक स्वर से इच्छित स्वर तक अंगुली को तार पर घसीटते हुए ले जाना।

8. कृन्तन– तन्त्र वाद्य की एक विशेष क्रिया है। कृन्तन का अर्थ काटने से है, अर्थात तार पर अघात करते समय दा या रा के जो बोल बजाये जाते है, तथा कृन्तन करते समय तर्जनी से स्वर को दबाकर मध्यमा अंगुली की सहायता से स्वर को काटा जाता है।

9. मींड– मींड एक महत्वपूर्ण क्रिया है, जिसके माध्यम से एक स्वर से दूसरे स्वर तक अखंडित ध्वनि उत्पन्न की जाती है। प्रत्येक वाद्य में मींड लेने का तरीका भिन्न–भिन्न हो सकता है, जैसे सितार में मींड लेते समय तार पर स्वर को बजा के अघात कर तर्जनी व मध्यमा के द्वारा तार को दो–तीन अथवा अधिक स्वर तक खींचा जाता है। जिससे एक अखंडित ध्वनि उत्पन्न होती है।

10. झाला– सितार पर बाज और चिकारी के तार पर समान लय के साथ अखंडित ध्वनि में बाज के तार पर दा और चिकारी के तार पर रा रा रा के बोलो को तालानुसार बजाया

है। इसे झाले के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसमें सौन्दर्यात्मक पक्ष को बढ़ाने के लिए मींड, कण, कृन्तन आदि का प्रयोग किया जाता है। झाले के भी दो प्रकार प्रचार में है। सुलटा झाला और उलटा झाला। तन्त्री वाद्यों में झाला एक मनोरंजक क्रिया है। जो द्रुत लय में प्रयोग की जाती है, जिससे विचित्रता पर उत्सुकता का भी उद्भव होता है।

5.2.3.2.3 सितार के विभिन्न बाज[83]

वाद्यों पर प्रस्तुत की जाने वाली बंदिशों को ही गत कहा जाता है। मध्यकाल के उत्तरार्द्ध और आधुनिक युग के पूर्वाद्ध में गत वादन का चरण देखने को मिलता है। माना जाता है इससे पूर्व गत वादन को कई प्रमाण प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार कहा जा सकता है, कि जब गायन के प्रचार के साथ ही आधुनिक युग के आगमन के बाद वाद्यों का स्वतंत्र वादन आरम्भ हुआ और इसके साथ ही वादन की नवीन शैलियां प्रचार में आना आरंभ हो गई। सितार वाद्य में प्रकार की शैलियों का भी निर्माण हुआ, जो कि इस प्रकार है।

1. फिरोजखानी बाज

2. मसीतखानी बाज

3. अमीरखानी बाज

4. रजखानी बाज

5. सेनिया बाज

6. इमदादखानी बाज

7. जाफरखानी बाज

8. मिश्रबानी बाज

9. सितारखानी बाज

---

(83) सितार वादन की शैलियाँ– रजनी भट्नागर, पृष्ठ–60

1) फिरोजखानी बाजः– इस गत का निर्माण फिरोज खां जी द्वारा किया गया। यह 14वीं और 16वीं सदी में प्रचार में आयी, परन्तु अधिक प्रचार नहीं किया गया। आचार्य ब्रहस्पति के मतानुसार फिरोज खां जी ''अदारंग'' के नाम से ख्याल की बंदिशों की रचना करते थे। यह मसीत खां जी के पूर्वज है।

2) मसितखानी बाजः– मसीत खां जी ने 18वीं–19वीं शताब्दी ने इस गत का निर्माण किया। मसीत खां जी पहले जयपुर में रहा करते थे और बाद में यह दिल्ली जा कर रहने लगे। इसे ''दिल्ली बाज'' या ''पश्चिमी बाज'' भी कहते है। इस गत को 12वीं मात्रा से उठाया जाता है। इसके कुछ निर्धारित बोल भी है, जो कि इस प्रकार है – दिर दा दिर दा रा दा दा रा। इस छन्द को मसीतखानी गत का मुख्य स्वरूप माना जाता है। मसितखानी गत में गमक और मींड वादन का विशेष स्थान होता है।

3) अमीरखानी बाजः– इसका निर्माण रहीम सेन के पुत्र अमृतसेन जी थे, जो सेनिया घराने से सम्बन्ध रखते थे। जिनके शिष्य अमीर खां जी थे। अमीर खां जी ने अपना स्वतंत्र वादन किया और अमीरखानी गत का आरंभ किया। इस बाज में मसीतखानी गत को ही कुछ परिवर्तित कर नवीन शैली का निर्माण करने का प्रयास किया गया है। मसीतखानी की लय मध्य कर इसके बोलो को आधा लिया गया है, जैसे दा दिर दा रा दा दा रा को स्थान दिया गया, परन्तु यह प्रचार में नहीं आ सकी।

4) रजाखानी बाजः– इस गत का निर्माण गुलाम रजा खां जी द्वारा 18वीं शताब्दी में किया गया। इस गत में स्थान का कोई निश्चित नहीं है, परन्तु छन्द निश्चित है, जो कि दा दिर दिर दिर दाऽ रादा डर दाऽ। इसकी रचना अधिकतर तीनताल में ही सुनने को मिलती है। इसे ''लखनऊ बाज'' या ''पूर्वी बाज'' भी कहा जाता है। इसका निर्माण तराना, ठुमरी के आधार पर ही किया गया, जो कि अपने स्वरूप के कारण अत्याधिक प्रचार में आयी और लोकप्रिय भी हुई।

5) सेनिया बाजः– इस गत का आरंभ सेन वंश के अमृतसेन जी ने किया। अमृतसेन जी रहीम खां जी के पुत्र थे और यह परम्परा सेनिया घराने में अधिक देखने को मिलती है।

6) इमदादखानी बाजः– इमदाद खां जी ने ख्याल गायकी से प्रभावित हो कर, इस शैली के वादन को आरंभ किया। जिसकी परम्परा वर्तमान में लगभग सभी बड़े सितार वादकों में दिखाई दे रही है। जिनमें उस्ताद विलायत खां साहब से लेकर शाहिद परवेज तक देखने को मिल रहा है।

7) जाफरखानी बाज–इस बाज को जन्म देने का श्रेय पद्मश्री द्वारा सम्मानित सितार वादक पद्मश्री उस्ताद अब्दुल हलिम खां जाफर जी को है। यह विश्वविख्यात सितार वादक हुए है, जिनका सम्बन्ध इंदौर से रहा है। उस्ताद जी की वादन शैली में दोनों हाथ की तैयारी का वादन देखने को मिलता है। इस वादन शैली में जमजमा, खटका, मुर्की का भी प्रयोग काफी देखने को मिलता है।

8) मिश्रबानी बाज– सितार वादन में मिश्रबानी का प्रचार काफी देखने मिलता है, जो कि कई बड़े कलाकारों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली शैली है। अधिकतर सितार पर प्रस्तुत की जाने वाली गते अथवा बंदिशे तीनताल में ही प्रस्तुत की जाती है और निबद्ध होती है। परन्तु कलाकार अपनी सर्जनात्मकता के आधार पर कई भिन्न–भिन्न तालों में गत की रचना करते है। इसमें दा रा के बोलों का अधिक प्रयोग होता है। इस शैली में रूपक, झपताल आदि में रचना की जाती है तथा द्रुत लय में इसका वादन किया जाता है।

9) सितारखानी बाज– इस शैली का विकास रजाखानी गत के आधार पर ही रजाखानी बाज के कलाकारों द्वारा किया गया। इस शैली के अन्तर्गत अधिकतम धुन वादन सुनने को मिलता है, जो कुछ विशेष राग काफी, पीलू, भैरवी आदि में अधिक प्रचलित है। इसके बोलों में दिर दिर दा रदा दार दा रा ऽदा र दा दा र प्रयोग होता है। इस शैली में गत वादन सांतवी मात्रा के किया जाता है। इसके अतिरिक्त सितार की गत वादन में कई अन्य प्रकारों से भी गत का निर्माण किया जाता है– तराना आधारित, ख्याल आधारित, ठुमरी आधारित तथा टप्पा इन सभी के आधार पर भी नवीन गतों का निर्माण किया जाता है, जो कि वर्तमान में श्रोताओं द्वारा अत्याधिक पसंद भी किया जा रहा है। जिससे गत वादन में सर्जनात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न होता है।

5.2.3.2.4 सितार के प्रकार[84]

सादा सितार

इस प्रकार के सितार में तरब के तार नहीं लगे होते है, इस कारण इसको सादा सितार कहा जाता है, यह आकार में भी कुछ छोटा होता है। इसका डांड चार अंगुल चौड़ा और तुम्बा दो फीट तक का हो सकता है। इस प्रकार के सितार का अधिकतम प्रयोग सितार वादन की आरंभिक शिक्षा के समय होता है।

तरबदार सितार

तरब के तार है, जो कि सितार में पर्दों के नीचे लगे होते है, जो राग के स्वरों के अनुरूप मिलाये जाते है। इन तारों को मिजराब से ना बजा कर कनिष्ठा ऊँगली के माध्यम से बजाया जाता है। यह तार भी डांड में ऊपर लगे तारों के समना ही डांड में लगाये जाते है, जिन्हें मिलाने के लिए छोटी खुटियाँ लगी होती है। इस तारों के मध्यम से सितार में मिठास के साथ–साथ गूंज भी पैदा होती है। तरबदार सितार का आकार में सादे सितार की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है।

चल थाट की सितार

जिन सितार के पर्दे आवश्यकतानुसार अपने स्थान से परिवर्तित हो सकते है, उस सितार को चल थाट की सितार कहते है। इस प्रकार के सितार में 16, 18 या 19 पर्दे तक होते है। वर्तमान सितार जो स्वरूप प्रचार में है, वह चल तहत का ही है।

अचल थाट की सितार

अचल थाट की सितार में शुद्ध तथा विकृत दोनों प्रकार के स्वरों के पर्दे होते है। जिससे सितार के पर्दों को उनके स्थान से हटाने की आवश्यकता नहीं होती है। अचल थाट की सितार में 24 पर्दों तक की सुविधा सितार के डांड पर होती है। अचल थाट के सितार का प्रयोग वर्तमान में कम ही किया जाता है।

---

(84) मिश्र लाल मणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–136

सितार

इस प्रकार वादन की भिन्न शैलियाँ और गतें वर्तमान में देखने को मिलती है। कुछ इनमें से प्रायः लुप्त भी हो रही है। इस प्रकार सितार वादन कला तथा प्रकारों में समय–समय पर परिवर्तन देखने को मिला है। इन्हीं बंदिशों तथा गतों के अनुसार विभिन्न बाजों की जानकारी प्राप्त होती है और साथ ही, तंत्रकारी और ख्याल गायकी का वादन वर्तमान में कलाकारों के द्वारा किया जा रहा है।

5.2.3.2.5 पं० रविशंकर

सितार और पं० रविशंकर एक दूसरे के प्रर्याय के रूप में जाने जाते है। भारतीय संगीत और सितार को विश्व के पटल पर स्थापित करने का कार्य पं० रविशंकर जी ने किया है। पं० रविशंकर जी का जन्म बाबा विश्वनाथ की नगरी बनारस के उत्कृष्ट विद्वान पं० श्यामशंकर जी के घर 7 अप्रैल 1920 को हुआ था।[85] पं० रविशंकर जी के पिता श्याम शंकर जी डॉ० की उपाधि भी धारण किये हुए थे। डॉ० श्यामशंकर जी ने इंग्लैंड से बार एट.० ला० एवं जेनेवा विश्वविद्यालय से राजनीति में डाक्टरेट किया, वे उच्चकोटि के संस्कृत के ज्ञाता और दर्शन शास्त्र के अध्यापक के रूप में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में अपनी सेवाएँ प्रदान करी थी। पं० रविशंकर अपने परिवार में सबसे छोटे थे। पं० रविशंकर

(85) गर्ग लक्ष्मी नारायण/हमारे संगीत रत्न/पृ०–496

जी चार भाई थे और पं० रविशंकर जी के सबसे बड़े भाई उदयशंकर जी थे, जो कि उच्चकोटि के नर्तक थे। पं० रविशंकर जी के पिता श्याम शंकर जी को नृत्य से बहुत प्रेम था। पं० रविशंकर जी का भी बाल्यकाल अपने बड़े भाई के नृत्य मण्डली में ही व्यतीत हुआ और 18 वर्ष की आयु तक आपने इसी मण्डली में एक नर्तक के रुप में संगीत की सेवा की, और साथ ही कई देशों का इस बीच मण्डली के साथ भ्रमण भी किया।**(86)**

इसी भ्रमण के दौरान पं० जी की भेंट 1935 में उस्ताद अलाउद्दीन खां जी से साथ हुई। बाबा अलाउद्दीन खाँ, इस मंडली के साथ एक वर्ष तक रहे थे। इस बीच पं० जी को जब भी समय मिलता, तो वह कोई ना कोई वाद्य बजाने लगते थे, जैसे इसराज, दिलरुबा और बांसुरी, परन्तु पं० रविशंकर जी की विशेष रूचि सितार की ओर थी और बाबा अलाउद्दीन खाँ जी ने इस बीच पं० जी को सितार की प्राराम्भिक शिक्षा दी और पं० रविशंकर जी ने धीरे–धीरे अपना पूरा ध्यान सितार की ओर लगाना आरंभ कर दिया और नृत्य की ओर से उनका मोह कम होने लगा। 1938 में पं० रविशंकर जी नृत्य को त्याग कर मैहर जा पहुचें और सितार की शिक्षा लेना आरम्भ कर दिया। पं० रविशंकर जी ने छः वर्षों तक सितार की घोर तपस्या की। जिसमें से अराम्भ के तीन साल सुरबहार पर मात्र जोड़ आलाप की ही शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् 1945 में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने अपनी पुत्री अन्नपूर्णा देवी, जिन्होंने अपने पिता से ही सुरबहार की शिक्षा प्राप्त की और वह उच्चकोटि की संगीतज्ञ बनी, से पं० रविशंकर जी का विवाह कर दिया। पं० रविशंकर जी ने अपने एक साक्षत्कार में बताया हैं कि ''नृत्य त्यागकर सितार बजाने का यह निर्णय उनके लिए कितना कठिन था, परन्तु इस निर्णय को लेने का श्रेय बाबा अलाउद्दीन खाँ जी को देते है। इस बात को वह बहुत ही हर्षित और गर्व के साथ बताते है।''**(87)**

1945 में पं० रविशंकर जी ने एक नृत्य मंडली का निर्देशन किया, इसके पश्चात् '' इंडियन नेशनल थियेटर'' द्वारा बनाये गये कार्यक्रम ''डिस्कवरी ऑफ इण्डिया'' में संगीत निर्देशन का कार्य किया, जिसके पश्चात् पं० जी को ख्याति प्राप्त होना आरंभ हुई, और फिर आपने आकाशवाणी में वृन्दवादन का भी निर्देशन किया, और भारतीय वाद्यवृन्द को उच्चशिखर

---

(86) बसंत / संगीत विशारद / पृ०–509

(87) कासलिवाल सुनीरा और त्रिपाठी रविन्द्र से पं० रविशंकर की बातचीत प्रयोगों से भ्रष्ट नहीं होता संगीत, जनसत्ता, दिल्ली, 7 अप्रैल, 1995, पृ० – 5

तक पंहुचा दिया। इस वृन्दवाद्य में पं० जी के मुख्य राग बसंत, बहार, देशी, शुद्ध सारंग, कामोद, हंसध्वनि, झिंझौटी, मरूबिहाग आदि रागों अधिक प्रयोग करते थे। आंधियाँ फिल्म का संगीत भी लोगों द्वारा काफी पसंद किया गया। इसके पश्चात् 1946 में पं० रविशंकर जी ने आकाशवाणी में त्याग पत्र दे कर विदेश चले गए और विश्व पटल पर भारतीय संगीत को स्थापित करने का कार्य आरंभ कर दिया। पं० जी ने अमेरिका, जर्मनी, इटली, हॉललैंड आदि देशों में आपने मंच प्रदर्शन से संगीत का मान बढ़ाया। पं० रविशंकर जी बहुत ही नम्र स्वभाव व्यक्ति के थे। पं० रविशंकर जी ने बहुत से रिकॉर्ड बनाये, और बहुत से रागों की भी रचना की, जिनमें से नट भैरव, बैरागी, तिलक श्याम, रसिया, कामेश्वरी, रंगेश्वरी, परमेश्वरी एवं मोहनकौंस रागों की रचना की।

पं० रविशंकर की वादन शैली अपने में अनोखी मानी जाती हैं, क्योंकी वह अपने वादन में तकनीकी रूप में अलग रूप ही प्रदान कर देते थे, जो कि चमत्कारिता को प्रस्तुत करता था।[88] पं० रविशंकर जी की वादन शैली में लय और ताल को समान रूप से महत्त्व देखते को मिलता है, और साथ ही सितार में प्रयोग आने आने वाली प्रत्येक छोटी–छोटी तकनीक को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, जैसे की कृन्तन, मींड, घसीट, जमजमा आदि जो की सितार को एक अनोखा आकर्षण प्रदान करता है।

By adding a bass string, he has enabled his sitar to Produce the deep contemplative sound in lower register which is so essential in the dhrupad style- This has also brought his sitar closer to been (Rudra Veena) and he has thus remained true to the senia beenkar tradition bequeathed to him by Allauddin khan who himself was a disciple of Wazir Khan a descendant of Tansen.[89]

वादन शैली की एक अलग खासियत यह भी है, कि पं० रविशंकर जी के सितार में तारों का स्वरूप कुछ इस प्रकार मिलता है कि जैसे– जोड़े के अलावा पं० रविशंकर जी के सितार में दो तारों को अलग से स्थान प्राप्त है, जिन्हें लरज के तार भी कहते है, जो कि मंद्र षड्ज और चौथा तार खरज का तार होता है, ये पीतल का होता है और इसको अतिमन्द्र पंचम में मिलाया जाता है, पांचवां तार मन्द्र पंचम में मिलाया जाता है और यह

(88) गर्ग मुकेश डॉ०/सितार की एक मिसाल है पं० रविशंकर/संगीत–जुलाई 1991/पृ०–43
(89) Kumar Kuldeep/There's nobody quite like him/ The Pioneer/Friday 7April 1995/Pg- 13

तार लोहे का है। इसके पश्चात् दो चिकारी के तार है, पं० जी के वादन में आलाप का गंभीर स्वरूप दिखाई देता है, जो कि बीन अंग और ध्रुपद की छाप को दर्शाता है। पं० रविशंकर जी के वादन में लयकरियां और तिहाइयां काफी देखने को मिलती है। गतों का स्वरूप लगभग सभी रागों में देखने को मिलता है और पं० रविशंकर जी की गतें अधिकतम विलम्बित और मध्यलय में मिलती है। झाले में अधिकतम ''दारा दिर, दारा दिर'' के बोलो के साथ देखने को मिलता है।

पं० रविशंकर जी ने अपने जीवन की सभी बातें और जीवन की यात्रा अपनी आत्मकथा "MY MUSIC MY LIFE" लिखी है। पं० रविशंकर जी बड़े ही विनम्र स्वभाव के व्यक्तित्व के स्वामी थे। पं० रविशंकर जी को अपने जीवनकाल में अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए है, जिनमें 1999 में प्राप्त हुआ, भारत का सर्वोच्चय सम्मान ''भारत रत्न'' भी शामिल है। इसके अतिरिक्त 14 मानद डिग्री, 2 ग्रेमी, UNESCO International Music Council (1975) आदि। पं० रविशंकर जी की दो पुत्रियाँ है, जिनमें सुप्रसिद्ध सितार वादिका अनुष्का शंकर और ग्रेमी पुरस्कार विजेता और गीतकार नोराह जोंस है, जो वर्तमान में संगीत के प्रचार–प्रसार में कार्य कर रहीं है। सैन डिएगो, कैलिफोर्निया में पं० रवि शंकर जी का हृदय गति रुक जाने के कारण 92 साल की उम्र में 11 दिसंबर, 2012 को निधन हो गया। संगीत की दुनिया में पं० जी को प्यार और सम्मान से ''विश्व संगीत का गॉडफादर,'' भी कहा जाता है। साथ ही पं० रविशंकर जी को पूर्वी और पश्चमी संगीत के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी भी कहा जा सकता है। संगीत जगत पं० जी की इस सांगीतिक सेवा का सदा आभारी रहेगा।

5.2.3.2.6 उ० विलायत खाँ

उस्ताद विलायत खां संगीत जगत का वह सितारा है, जिसने संगीत जगत को अपने जीवन का एक बहुत बड़ा भाग अर्पित किया। उस्ताद जी का जन्म जन्माष्टमी की रात 28 अगस्त 1928 को पूर्वी बंगाल के गौरीपुर स्टेट में हुआ था, जो कि उस समय ब्रिटिश भारत का भाग था[(90)] और अब वह वर्तमान बांग्लादेश के अन्तर्गत आता है। उस्ताद विलायत खाँ का जन्म एक सांगीतिक परिवार में हुआ था। उस्ताद विलायत खाँ के वालिद साहब उ०

(90) बसंत/संगीत विशारद/पृ०–509

इनायत खां जी थे, जो की उच्च कोटि के सुरबहार वादक और महान संगीतज्ञ थे। उस्ताद विलायत खाँ की वालिदा भी अच्छी संगीतज्ञा थी, जिनसें आपको बहुत ही प्रेरणा प्राप्त हुई।

श्री सुरजन सिंह
↓
उस्ताद तुराब खाँ
↓
उस्ताद साहबदाद खाँ
↓
उस्ताद इमदाद खाँ
↓
उस्ताद इनायत खां | **उस्ताद वहीद खा**

उस्ताद इनायत खां
↓
उस्ताद विलायत खां → ↓ **शुजात खां**
उस्ताद इमरत खां → ↓ **निशात खां**

उस्ताद विलायत खाँ जी बताया कि सितार वाद्य प्राचीन वीणा का ही परिवर्तित रूप है। इनके दादा उस्ताद इमदाद खाँ अपने समय के रुद्रवीणा–वादक थे।[91] उस्ताद इमदाद खाँ के मन में सबसे पहले सितार में तरब के तारों को जोड़नें की इच्छा उत्पन्न हुई, जिसे उ० विलायत खाँ के पिता इनायत खाँ ने पूरा किया। उन्होनें संगीत–वाद्यों के निर्माता कन्हाई लाल के माध्यम से इस स्वप्न को साकार किया। सितार के ऊपरी हिस्से पर दूसरा तुम्बा लगाने का श्रेय प्राप्त है। प्रारम्भ में उस्ताद जी का पालन–पोषण बहुत ही उच्च वातावरण में हुआ, परन्तु कुछ ही वर्षो बाद 1939 ई० में उस्ताद जी के वालिद जी के देहांत के बाद परिवार पर दुखों और कष्टों का समना करना पड़ा और उस्ताद जी अपनी वालिदा के साथ पुरानी दिल्ली आ कर रहने लगे। वहाँ आपकी शिक्षा आपके नाना जी के यहाँ हुई और उस्ताद जी ने तब बहुत ही कठिन परिश्रम से सितार की साधना की। कुछ समय अपने चाचा वहीद खां से कुछ ज्ञान प्राप्त किया। स्व० उस्ताद फैयाज खां से भी कुछ शिक्षा ली, उस्ताद जी पर उस्ताद अल्लादिया खाँ का और उनकी गायन शैली का

(91) गर्ग लक्ष्मी नारायण/हमारे संगीत रत्न/पृ०–510

काफी प्रभाव था।[92] उस्ताद जी के परिवार में संगीत रूह में बसा हुआ था, क्योंकी परिवार में लगभग छः पीढ़ियों से चली आ रही थी। इस संगीत को परिवार में स्थापित करने का श्रेय श्री सुरजन सिंह को है, जो कि राजपूत काल में गायक थे।[93]

उस्ताद जी ने हिंदी, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला और अंग्रेजी का अध्ययन तब किया, जब उन्हें यह अनुभव हुआ कि यह भी आवश्यक है, क्योंकी बाल्यकाल में लाड़–प्यार में स्कूली शिक्षा के लिए जोर नहीं दिया गया था। उस्ताद जी ने दिल्ली आकाशवाणी केंद्र को भी अपनी सेवा प्रदान की। इस प्रकार अपने संगीत की सेवा की और सितार की साधना कई वर्षों तक की, इसके पश्चात् आपने देश के कई बड़े–बड़े सम्मेलनों में अपना वादन प्रस्तुत किया। इसी क्रम में काफी छोटी आयु में 1944 में उस्ताद जी ने कलकत्ता में अपनी एक प्रस्तुति दी। जिसमें उस्ताद जी के साथ संगति उस्ताद अहमद जान थिरकवा जी ने की, जिससें उस्ताद विलायत खां की ख्याति में चार चाँद लग गए। जिससें सभी स्थानों पर उस्ताद जी की ख्याति होने लगी। इसके पश्चात् अफ्रीकी महाद्वीप, फ्रांस, इटली, इंग्लैंड, स्विट्जरलैंड वर्मा, स्पेन रूस सभी स्थानों पर भारत का परचंप अपने सितार वादन से लहराय और विश्व पटल पर भारत का मान बढ़ाया।

उस्ताद जी का वादन पूर्ण रूप से उनकी चित्त के विचारों पर निर्भर करता था, जैसा चित्त वैसी ही झलक उनके वादन में दिखाई देती थी। यही चित्त प्रसन्न तो गत पलटें आदि में चमत्कारिक बढ़त देखने को मिलती थी और चिन्तन के समय अलाप पर पूरा चिन्तन देखने को मिलता था। उस्ताद जी के प्रिय रागों में मधुवंती, केदार, शुद्ध सारंग, ललित पूरिया धनाश्री कल्याण मल्हार मुल्तानी आदि राग थे, जिनमें अधिकतर प्रस्तुति आज भी रेडियो पर सुनने को मिलती है। उस्ताद जी के कई शिष्य थे, जिनमें प्रमुख्य शिष्यों में अरविन्द पारीख, कल्याणी रॉय, रईस खां, आदि ने शिक्षा प्राप्त की साथ ही अपने छोटे भाई ने भी आपसे संगीत सिखा। राईस खां को भी सितार वादन की शिक्षा दी, जो कि आपकी बहन

(92) शर्मा सत्येन्द्र / उस्ताद विलायत खां / संगीत / मार्च, 1969 / पृ०–41
(93) सितार–वादक उस्ताद विलायत खां / संगीत / जून–1969 / पृ०–39

नसीरन और मसीत खां के भतीजे मुहम्मद खां के पुत्र थे। उस्ताद जी के पुत्र शुजात खां जी इस काल के उच्चकोटि के सितार वादक है।[(94)]

उस्ताद जी ने अपने सितार वादन के साथ ही कई फिल्मों में अपना संगीत भी दिया जिनमें राग को विशेष महत्व भी दिया। उस्ताद जी पर गायकी का बहुत अधिक प्रभाव था, जो कि उस्ताद जी की वादन शैली में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उस्ताद जी का सितार सुर करने का दंग अर्थात् मिलाने का ढ़ग पं० रविशंकर से पूरी तरह भिन्न है। उस्ताद जी के घराने में सितार में पांच तार होते थे। जिन्हें मध्यम, जोड़ पंचम और दो चिकारी, परन्तु उस्ताद जी ने इसमें एक तार और जोड़ दिया और उसको वादी और सम्वादी के अनुरूप सुर अर्थात् मिलाया जाता है।

उस्ताद जी अधिकतर अपने सितार को गंधार या फिर राग के वादी स्वर पर ही सुर करते थे, जो कि रस वृद्धि और राग की मिठास में सहायक सिद्ध होती थी। उस्ताद जी का वादन पूर्ण तौर पर गायकी अंग को दर्शाता था और इस कारण अलाप का ढंग भी गायकी प्रधान था। उस्ताद जी अधिकतर मसीतखानी गत में आड़ी लय का बहुत प्रयोग किया करते थे और बारह की जगह कभी–कभी 15 वी० मात्रा से गत उठा लेते थे और रजखानी गतों में बड़ी ही चपलता के साथ पहली पंक्ति उठा कर ही तान और पलटें प्रस्तुत कर देते और राग के बढ़त को दर्शाते थे।[(95)] उस्ताद जी के शौक भी भिन्न प्रकार के थे, जिनमें बन्दूकों, मोटर–इंजीनियरिंग, पान और इत्र का शौक मुख्य था। उस्ताद जी के पास कई बंदूके थी, जिनका रख–रखाव वह स्वयं ही करना पसंद करते थे। इसी प्रकार अपने मोटर की भी स्वयं देखभाल करते थे। मंच पर जाने के पहले इत्र की सुगंध लेते और पान मुहँ में दबा कर ही प्रस्तुति करना पसंद करते थे। कई विदेशी उस्ताद जी को पान वाला संगीतज्ञ कह कर भी बुलाते थे।

उस्ताद जी अपने से किये जाने वाले प्रचार से दूर रहना पसंद करते थे और वह पैसे दे करें प्रचार को सही नहीं मानते थे। 13 मार्च 2004 को इस महान संगीतज्ञ का स्वर्गवास मुंबई में शनिवार के दिन हुआ और सेनिया घरानें के इस कलाकार ने इस जगत को

---

(94) गर्ग लक्ष्मीनारायण / हमारे संगीतरत्न / पृ० 538
(95) शर्मा वीना / हिन्दुस्तानी संगीत में तन्त्र वादकों का योगदान / पृ०–92–93

अलविदा कर दिया। उस्ताद जी ने 1939 से 2004 तक पूरी तरह से संगीत की सेवा की, जिसका संगीत जगत सदैव आभारी रहेगा।[(96)]

5.2.3.3 तम्बूरा

वर्तमान में प्रचलित तानपूरा ही प्राचीनकाल में तम्बूरा कहलाता था, विद्वानों के अनुसार तानपुरा तम्बूरे का ही विकृत नाम है। तम्बूरे को कई नामों से सम्बोधित किया जाता था, जिससे तम्बूर, तम्बूरा, तम्बुरू, तुम्बुरू इत्यादि नाम सम्मिलित है। इसे तुम्बुरी वीणा भी कहकर सम्बोधित किया जाता था। कुछ विद्वानों का तो यह भी मत है कि तम्बरा तुम्बुरू नामक गंधर्व द्वारा निर्मित वीणा है। तुम्बुरू नामक कई ऋषि तथा गंधर्वों का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। एक तुम्बरू ऋषि थे, जिनके नारद जी के समकालीन होने का प्रमाण प्राप्त होता है, जो नाट्य तथा गान के ज्ञान में परिपक्व थे। इस तथ्य के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि इन्हीं में से एक तुम्बुरू के नाम पर ही तम्बूरा नामक वीणा नामकरण हुआ, व यही तुम्बुरू इस तम्बूरे का वादन करते होगें, परन्तु इन सभी तथ्यों का कोई भी निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं होता है।

निःस्वानवत्तम्बरीस्यात् ततोल्वो गात्रवादयोः।
वाध्ते सद्वितीयोऽसौ दमामेति निगधते।।[(97)]

राणा कुम्भा जी द्वारा अपने ग्रन्थ संगीत राज में तम्बूरा को तम्बूरी कह कर सम्बोधित करते हुए वर्णन प्रस्तुत किया है।

कलावती तुम्बरोस्तुगणनां च प्रभावती।।[(98)]

संगीतोपनिषत्सारोद्धार के अर्न्तगत तम्बूरा को कलावती के रूप में सुधाकलश जी द्वारा वर्णित किया गया है।

तुम्बरोस्तु कलावती[(99)]

---

(96) शर्मा शान्तनु/प्रतिष्ठित सितार एंव सरोद वादकों की साधना और संघर्ष/पृ०–129–135
(97) संगीत राज–राणा कुम्भा/भरतकोश/पृ०–842
(98) संगीतोपनिषत्सारोद्धार–सुधाकलश/अध्याय–4/श्लोक–8
(99) वाद्य प्रकाश–विद्या विलासी/श्लोक–23–29

इसी प्रकार विद्या विलासी द्वारा भी तम्बूरे को कलावती नाम से वर्णित किया है।

परन्तु इन सभी तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है, कि तुम्बुरू वीणा तुम्बुरू मुनि की ही वीणा है।

जर्मन संगीत विद्वान डॉ० कुँर्ट सेक द्वारा अपनी पुस्तक The History of Musical Instrument में कहा गया है, कि फारसी शब्द तम्बूर के द्वारा ही तम्बूरी शब्द का निर्माण हुआ है,**[(100)]** परन्तु अब्दुल रज़ाक कानपुरी द्वारा इस तथ्य का खण्ड़न करते हुए, तम्बूरा शब्द को पूर्णतः भारतीय शब्द स्वीकारा गया है।

बाजत ताल मृदंग अघोरी।
बाजत ड़फ सुरबीन उपंग।।

कुम्भनदास जो अष्टछाप सम्प्रदाय से सम्बंधित थे, द्वारा तम्बूरे को सुरबीन कहा गया है, जिस कारण अष्टछाप के पदों में सुरबीन शब्द प्राप्त होती है। इसी स्थान पर कीर्तनाचार्य चम्पकलाल छबीलदास नायक द्वारा कहा गया है कि तम्बूरा मात्र स्वरों को स्पष्ट दर्शाने वाली वीणा होने के कारण, इसे सुरबीन व सुरवीणा माना जाता है। पं० अहोबल द्वारा जिन आठ प्रकार की वीणाओं के भेदों को वर्णित किया गया है, उसमें से तौम्बुर भी एक है व निबद्ध तथा अनिबद्ध तौम्बुर के ही दो रूप बताए है। इसी स्थान पर स्वरों को दर्शाने वाली वीणा के रूप में अबुल फज़ल द्वारा इसे स्वर वीणा कहा है। जिसे हिन्दू वीन के समरूप बताया है, जो सारिकाओं से रहित है व तीन तन्त्रियों से युक्त होती है।

यह तंबूरा दोय प्रकार का है।
एक निबद्ध दूसरा अनिबद्ध।।

जहाँ तांतिके बंधन नहीं कीजिऐ।
ते अनिबद्ध जानिए।।

बकि धुनि में निलिकीर राग गाइए........
जहाँ सात व पाँच व चार तार होय डांड़ी में स्वर के स्थानक में।।

तंति के बंधन नहीं होय।
और सब रीति निबद्ध तम्बुरा की तरह होय।।

गायब में स्वर की सहाय करें।

---

(100) The History of Musical Instrument/Sachs Dr.Curt/p.229

सो अनिबद्ध तंबूरा जानिए।।[101]

राधागोविन्द संगीतसार के रचयिता प्रतापसिंहदेव द्वारा तम्बूरे को अनिबद्ध वीणा के रूप में वर्णित करते हुए कहा है, कि तम्बूरे के द्वारा गायक को गायन के समय स्वरों का बोध होता है।

तम्बूरा

यदि प्राचीनकाल की मूर्तियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें, तो किसी भी प्राचीन कालीन मूर्ति में तानपुरे की झलक प्राप्त नहीं होती है, परन्तु मध्यकालीन कुछ स्थानों पर अवश्य ही तानपुरे को मूर्तिकला तथा चित्रकला में देखा जा सकता है। मुगलकाल में अवश्य ही तानपुरे का चित्र स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।[102] इसके अतिरिक्त 1633 में निर्मित

(101) राधागोविन्दसंगीतसार–सवाई प्रतापसिहंदेव / पृ०–6–7
(102) Art Material Culture In The Painting Of Akbar's Court/Plate No.-53

एक चित्र में महिला अपने कन्धे पर तानपुरे को रखकर उसका वादन व गायन प्रस्तुत करती हुयी अंकित है।[103] इसके पश्चात् 1640 से 1650 के मध्य अंकित एक चित्र द्वारा एक पुरूष को तानपुरे के वादन के साक्ष्य प्राप्त हुए है।[104] 1709 में प्राप्त राग भैरव के चित्र में एक पुरूष गायन प्रस्तुती के साथ अपने कन्धें पर तानपुरे को रखकर वादन करता दिखायी देता है।[105] 1720 में निर्मित किसनगढ़ के दरबार से प्राप्त चित्र में दो प्रकार के तम्बूरे है, जिनमें से एक निबद्ध तथा दूसरा अनिबद्ध तानपुरे का रूप है।[106]

इस प्रकार अष्टछाप, आइन–ए–अकबरी व मुगलकालीन चित्र यह सभी तथ्य इस बात को इंगित करते है, कि तम्बूरा मध्यकाल से ही प्रचार में था और यही तम्बूरा काल के परिवर्तन के साथ तानपुरा हो गया। तन्त्रियों की संख्या आवश्यकता के अनुसार घटती तथा बढ़ती रही। तानपुरे के दो स्वरूप स्वीकारे गए है, जो एकतन्त्री के समान है, जो सप्त स्वरों के वादन में सक्षम है तथा दूसरा रूप गायन के समय गायक को स्वर दिखने में प्रयोग में लाया जाता है। पं० शारंगदेव जी द्वारा प्रथम रूप को मुख्य वीणा के रूप में स्वीकारा गया है व द्वितीय रूप मध्यकाल में परिवर्तनों से होते हुए सुरबीन, स्वरवीणा आदि नामों के पश्चात् तानपुरे के रूप में प्रसिद्ध हुआ। वर्तमान संगीत पद्धति में तानपुरा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

भारत में संगीत की दो मुख्य पद्धतियां स्वीकारी जाती है, जिनमें से एक उत्तर भारतीय संगीत पद्धति तथा दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति। दोनों ही संगीत पद्धतियों में तानपुरा का महत्वपूण स्थान है। वर्तमान में होने वाले प्रत्येक संगीत कार्यक्रम में तानपुरा अपनी उपस्थित अवश्य दर्ज कराता ही है, व गायक तथा वादक बिना तानपुरे के प्रस्तुती नहीं करते।

इस प्रकार तानपुरे के नाम के अनुसार इसे तुम्बुरू, तुम्बुर इत्यादी की वीणा व अविष्कारक माना गया, परन्तु वीणा के आकार–प्रकार को देखा जाए, जो तम्बूरा पूर्ण रूप से त्रितन्त्री

(103) Imperial Mugal Painting/Plate No.35
(104) Imperial Mugal Painting/Plate No.35
(105) RaagMala Painting/Plate No.C2
(106) छबि भारत कला भवन/बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय बनारस

का ही मध्यकालीन स्वरूप जान पडता है। तम्बूरा तीन तन्त्रियों से युक्त अनिबद्ध वाद्य था, जिसमें गायकों तथा संगीतज्ञों द्वारा आवश्यकतानुसार चार तन्त्रियों की व्यवस्था की गयी। शोधार्थी द्वारा किए गए। अध्ययन से प्राप्त की त्रितन्त्री वीणा द्वारा तम्बूरे का निर्माण हुआ है। पं० लालमणि मिश्र जी द्वारा भी अपनी पुस्तक भारतीय संगीत वाद्य के अर्न्तगत त्रितन्त्री वीणा के अधुनिक रूप को तम्बूरे व सितार के रूप में स्वीकारा है।(107)

तानपुरा

5.2.3.3.1 तानपुरे का स्वरूप

तानपुरे की आकृति को यदि देखा जाए जो ज्ञात होता है, कि तानपुरे की आकृति सितार के समान है, परन्तु ध्यानपूर्व देखने व अध्ययन करने पर दोनों वाद्यों के मध्य काफी अन्तर देखने को मिलता है। सितार व तानपुरे के इसी अन्तर को राधागोविन्द संगीतसार में निबद्ध

(107) मिश्र पं० लालमणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–43

व अनिबद्ध वाद्यों के रूप में वर्णित किया गया है। सितार को निबद्ध तथा तानपुरे को अनिबद्ध की श्रेणी में विद्वानों द्वारा स्थान दिया गया है।[108] तानपुरे की आकृति को लेकर भी दो प्रकार प्राप्त होते है। तानपुरे को स्त्री तथा पुरूष दो रूपों में बाटाँ गया है, जिसमें से स्त्रियों का तानपुरा पुरूषों के तानपुरे की अपेक्षा आकार में छोटा होता है और साथ ही तारों की मोटाई में भी अन्तर पाया जाता है। पं० लालमणि मिश्र जी द्वारा अपनी पुस्तक भारतीय संगीत वाद्य में पुरूष तानपुरे के वर्णन को प्रस्तुत किया गया है।

तानपुरे की बनावट का अध्ययन तीन भागों बाँटकर किया जा सकता है, जिसमें से पहला ऊपरी भाग है, जहाँ खूंटियाँ लगी होती है। दूसरा भाग जहाँ से होते हुए तन्त्रियाँ खूंटियों तक पहुँचती है, तथा तीसरा नीचे का वह भाग जहाँ तुम्बे को स्थापित किया जाता है। इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि, ऊपरी तथा मध्य भाग को संयुक्त रूप से दण्ड़ कहा जाता है, यह दण्ड़ अन्दर से खोखले अर्थात् पोले होते है, जिसकी लम्बाई चालिस से बयालिस इंच की होती है।

दण्ड़ सितार के समान होता है, परन्तु तानपुरे का दण्ड़ अधिक गोलाई लिए होता है व चौड़ाई में 12 इंच के लगभग व्यास का होता है। दण्ड़ के बीच का भाग कुछ उठा हुआ होता है। तानपुरे में सितार के समान ही तुम्बे को दण्ड़ से जोड़ा जाता है और जोडनें वाले स्थान को गुलु कहा जाता है। तुम्बा सितार के तुम्बे की अपेक्षा काफ़ी बड़ा होता है, जिस पर मोटी तबली को स्थापित किया जाता है। तबली को सुन्दर नक्काशी आदि से सुसज्जित किया जाता है। सौन्दर्यशास्त्र की बारीकियों के साथ गुलु को भी पत्तियों के आकार में बनाकर तुम्बे व दण्ड़ को जोड़ा जाता है। तानपुरे में कुल चार खूंटियों को लगाया जाता है, जो तानपुरे के दण्ड़ में दो खूंटियाँ सामने की और एक खूंटी दण्ड़ के बांयी और व एक खूंटी दण्ड़ के दांयी ओर स्थापित की जाती है। तानपुरे के घुड़च को सांभर के सिंग द्वारा निर्मित किया जाता है तथा खैर, अखरोट या शीशम की लकड़ी से बनी खूंटियों का प्रयोग किया जाता है। तानपुरे में प्रयुक्त होने वाला तारगहन भी सांभर की सिंग का होता है। तानपुरा दक्षिण भारत तथा उत्तर भारत दोनों पद्धितियों में प्रयोग होता है। उत्तर भारत में निर्मित तानपुरा तुनु की लकड़ी तथा कद्दू के संयोग द्वारा बनाया जाता

(108) राधागोविन्द संगीतसार–सवाई प्रतापसिहंदेव / पृ०–6–7

है, परन्तु दक्षिण भारत में तानपुरा एक ही लकड़ी का बनाया जाता है, जो बिना किसी जोड़ को होता है। तानपुरे में प्रयोग होने वाली तन्त्रियों को निश्चित स्वर में निश्चित धातुओं द्वारा तथा निश्चित मोटाई की तारों को रखा जाता है। बांए और स्थित खूंटी की तन्त्रि पीतल धातु द्वारा निर्मित होती है, जो 24 नं० की मोटाई की तन्त्रि होती है, तथा इसे मंद्र पंचम में मिलाया जाता है, व राग के प्रबल स्वर में यदि मध्यम होता है तो इसे मन्द्र मध्यम में मिलाया जाता है अर्थात् गायक अपनी आवश्यकतानुसार स्वरों में मिलाते है। मध्य भाग की दो खूंटियों को जोड़ी का तार कहा जाता है, जो मध्य सप्तक के षड़ज में मिलाया जाता है, यह दोनों तन्त्रियों लौ अथार्त् इस्पात की धातु का होता है, यह 6–7 या 8 नं० की तार के होते है। दांए ओर की तन्त्रि भी पीतल की होती है, जो 22 नं० की तार की होती है व इसे मंद्र षड़ज में मिलाया जाता है व तानपूरे में गंधार स्वर स्वयंभू स्वर माना जाता है, जो स्वतः ही प्रस्फुटित होता है। तानपुरे में स्थापित घुड़च पर ही तारों को रखा जाता है, जो हड्डी का बना होता है, जो तानपुरे को झनंकृत बनाने में सहायक होता है। तानपुरे की जवारी को खोलने के पश्चात् उसमें धागा लगाया जाता है, जिसके कारण ही झनककार उत्पन्न होती है। इसी धागे को गायक अपनी इच्छा के अनुसार व्यवस्थित कर इच्छित स्वर की प्राप्ती करते है। तानपुरा एकमात्र वाद्य है, जिसमें इस प्रकार से धागे का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार प्राचीनकाल से वर्तमान संगीत में स्वर बोध के लिए सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाने वाला तानपुरा वाद्य संगीत जगत में अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

5.2.4 चित्रा

चित्रा वीणा को एक अत्यन्त प्राचीन वाद्य के रूप में स्वीकारा जाता है। भरत मुनि द्वारा सर्वप्रथम चित्रा वीणा का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जिसका वर्णन इस प्रकार है।–

विपंची चैव चित्रा च दारवीष्वड़्ग संज्ञिते।
कच्छपी घोषकादीनी प्रत्यड़्गनि तथैव च।।[109]

एक अन्य वर्णन भी प्राप्त होता है कि–

(109) नाट्यशास्त्र–भरत मुनि/अनुवादक–शास्त्री बाबूलाल/अध्याय–34/श्लोक–14

सप्ततन्त्री भवेच्यिता विपंचीतुभवेन्नव।
कोणवाद्या विपंची स्याच्चित्रा चांगुलिवादनात्।।(110)

अर्थात्– सात तारों से युक्त वीणा को चित्रा वीणा कहा है। जिसका वादन अंगुलियों की सहायता से किया जाता है। भरत मुनि द्वारा श्रुति व्यवस्था को वर्णित करने हेतु जिन दो वीणाओं पर सारणा चतुष्टयी को प्रस्तुत की जाए, वह वीणा भी सात तन्त्रियों से युक्त मानी गयी है। जिसे षड़ज ग्राम में मिलाकर सारणा की गयी है।

वे वीणे तुल्य..............चतुः श्रुत्यभ्याधिकत्वात्।।(111)

इन तथ्यों के आधार पर भरतमुनि द्वारा सारणा के लिए जिस वीणा की चर्चा की गयी है, वह चित्रा वीणा है। इस प्रकार भरत मुनि की मुख्य वीणा के रूप में चित्रा वीणा को स्वीकारा जाता है। भरत मुनि के कथनानुसार धातुओं, वर्णों तथा अलंकारों सभी के समन्वित गुणों से युक्त चित्रा वीणा को उपयोग किया जाना चाहिए।

धातुभिश्चित्रवीणाया गुरूलघ्वक्षरान्वितम्।
वर्णालंकारसंयुक्त प्रयोक्तव्यंबुधैरिह।।(112)

भरतभाष्य के रचयिता नान्यदेव द्वारा मतंग मुनि को चित्रा वीणा का वादक स्वीकारा गया है।

चित्रा मतंगः स्वातिश्च विपंचीमिति तद्यथा।
मतंगों वादकस्तस्याश्चैचिको नाम नापरः।।(113)

संगीत सुधा, संगीत मकरंद इत्यादि कई ग्रन्थों में ग्रन्थकारों द्वारा चित्रा वीणा के नाम का उल्लेख किया गया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा चित्रा वीणा के सप्ततन्त्री होने की बात कही गयी है।

तन्त्रीभिः सप्तभिश्चिताविपंची नमिर्मता।
कोणाड्गुलीवादनीया चित्रा तद्वद् विपंचिका।।
चित्रायामड्गुलीमात्रं।।(114)

---

(110) नाट्यशास्त्र–भरत मुनि/अनुवादक–शास्त्री बाबूलाल/अध्याय–29/श्लोक–118
(111) नाट्यशास्त्र–भरत मुनि/अनुवादक–शास्त्री बाबूलाल/अध्याय–28/पृ०–20
(112) नाट्यशास्त्र–भरत मुनि/अनुवादक–शास्त्री बाबूलाल/अध्याय–5/श्लोक–42
(113) भरत भाष्य–नान्यदेव/भरमकोश/पृ०–628

अर्थात्– पं० शारंगदेव जी द्वारा यह स्वीकारा गया है, कि चित्रा वीणा में सात तन्त्रियां होती है और इसका वादन कोण तथा अंगुलियों के माध्यम से होता है।

पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित है कि इक्कीस तन्त्रियों से युक्त मत्तकोकिला समस्त वीणाओं में प्रमुख है व साथ ही चित्रा वीणा के तीन प्रमुख तथ्यों को कहा है–

कोणाङ्गुली वादनीयाचित्र तद्वद्विपञ्चिका।
क्रमादन्येङ्गुलीकोण व्यवस्थामूचिरे तयोः।
चित्रायामङ्गुलीमात्रं विपञ्च्यामुभयं परे।।[115]

अर्थात्– सर्वप्रथम वर्णन करते हुए कहा है, कि विपंची वीणा व चित्रा वीणा कोण तथा अंगुलियों के माध्यम से वादन किया जाता है। द्वितीय तथ्य यह प्रस्तुत किया है, कि चित्रा वीणा अंगुली की सहायता से और विपंची वीणा को कोण की सहायता से बजानी चाहिए तथा अन्त में वर्णित किया गया है, कि चित्रा अंगुली की सहायता से विपंची वीणा कोण या अंगुली की सहायता से बजायी जा सकती है।

इन सभी तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि चित्रा वीणा सप्ततन्त्री वीणा है, जिसे कोण तथा अंगुलियों की सहायता से वादन होता है। अंगुलियों द्वारा वादन को इस कारण स्वीकार जाता है, क्योंकि चित्रा वीणा स्वरमंड़ल अर्थात् मत्तकोकिला का ही लघु रूप माना गया है। वीणाओं के विषय में भरतकाल के पूर्ण से जानकारी प्राप्त होती है। भरतकालीन तथा उससे पूर्व में बनायी गयी, गुफा मन्दिर आदि में चित्रकला के माध्यम से समाज की संस्कृति व परिस्थितियों को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। प्राचीन चित्रकला को समाज व सस्ंकृति के दपर्ण के रूप में देखा जाता है, जो अतीत को वर्तमान से जोड़ने के सेतु के रूप में विद्यमान है, मन्दिर आदि की कलाकृतियों द्वारा उस काल में उपस्थित परिस्थिति का भान होता है। भरत मुनि के काल की वीणाओं की जानकारी इन्हीं कलाकृतियों के माध्यम से होती है। इन गुफाओं, मन्दिरों आदि में चित्रित सभी वीणाओं को समझपाना एक अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि चित्रकाला के माध्यम से कला का तो भान होता है, परन्तु वाद्यों की सूक्ष्म आकृति को समझ पाना कठिन हो जाता है। अधिकतर प्राप्त

(114)पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/श्लोक–110–112
(115) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/श्लोक–111

कलाकृतियों में चित्रा तथा विपंची के चित्र प्राप्त हुए है। भरतकाल की चित्रा तथा विपंची दोनों ही सर्वाधिक प्रचलित व प्रमुख वीणा स्वीकारी जाती है।

चित्रा वीणा(116)

विपंची वीणा में नौ तथा चित्रा वीणा में सात तार होने की जानकारी प्राप्त होती है, परन्तु निश्चित तौर पर यह नहीं स्पष्ट होता है, कि किस तार को किस स्वर में मिलाया जाता था, जो भी चित्र प्राप्त हुए है। उनमें तारों की संख्या व खूंटियों की संख्या में भी अन्तर प्राप्त होता है। इस प्रकार चित्रकला की कृतियों से यह तो अवश्य ज्ञात होता है, कि उस काल में वीणाओं का सर्वधिक महत्व था, परन्तु वीणा के निश्चित स्वरूप की जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है, कि भरतकालीन चित्रा वीणा का प्रचार एकतन्त्री तथा किन्नरी वीणा की बढ़ती लोकप्रियता के कारण कम होता चला गया व चौदहवीं शताब्दी के लगभग चित्रा वीणा के स्थान पर रबाब वाद्य को महत्व प्राप्त होने लगा, जिसे सेनिया घरानें में स्थान प्राप्त हुआ, और अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से वाद्यों के अधुनीकरण का दौर आरम्भ हुआ, जिसमें चित्रा वीणा के मिलते–जुलते वाद्य रबाब से ही

(116) मिश्र लालमणि / भरतीय संगीत वाद्य / चित्र सं०–11 / पृ०–5

सूरसिंगार व सरोद वाद्य प्रयोग में आए, जिसमें से वर्तमान तन्त्री वाद्यों की श्रेणी में सरोद एक अत्यन्त लोकप्रिय वाद्य है।

5.2.4.1 रबाब

रबाब का अविष्कार मध्यकाल में होने के कुछ साक्ष्य प्राप्त होते है, जिनमें से 1560 में रचित संगीत पारिजात में रबाब का वर्णन पं० अहोबल द्वारा कुछ इस प्रकार से किया गया है कि–

रवं वहति यद्यस्मात्ततो रवावहः स्मृतः।[117]

इसके अतिरिक्त कई अष्टछाप कवियों द्वारा भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है। रबाब शब्द अरबी भाषा को शब्द स्वीकारा गया है। रबाब वाद्य इस्लामिक मान्यता वाले देशों में प्रयुक्त होने वाला वाद्य माना जाता है, परन्तु जो वाद्य प्राप्त होता है, वह गज वाद्य ल्युट का ही रूप माना गया है।[118] 1854 ई० में रचित मोहम्मद करम इमाम की पुस्तक मआदनुल मौसकी[119] के अर्न्तगत व सादिक अली खाँ की पुस्तक शरमा–ए–इशरत[120] जो 1854 ई० में रचित पुस्तक है, में रबाब के निर्माणकर्ता अरस्तु तथा सिकन्दर को कहा है।

संस्कृत ग्रन्थों में पं० अहोबल से पूर्व किसी भी अन्य ग्रन्थ में रबाब का वर्णन प्राप्त नहीं होता है, जिससे ज्ञात होता है, कि रबाब वाद्य अहोबल के काल से ही प्रचलन में आया। इसके पश्चात् पद्मावत में मलिक मोहम्मद जायसी के द्वारा रबाब को वर्णित किया गया है, जो कि इस प्रकार है–

जन्त्र पखाउझ आउझ बाजा।
सुरमंण्डल रबाब भल साजा।।[121]

इसके अतिरिक्त कबीर की साखियों में रबाब का वर्णन प्राप्त होता है।

---

(117) संगीत पारिजात/पं० अहोबल/वाद्यायाय/श्लोक–125
(118) ग्रोवस संगीत कोश/भाग–15/पृ०–521
(119) इमाम मोहम्मद करम/ मआदनुल मौसकी/पृ०–58
(120) खाँ सादिक अली/शरमा–ए–इशरत/पृ०–283
(121) जायसी मलिक मोहम्मद/पद्मावत/पृ०–43

रबाब

सब रग तांत रबाब तन विरह बजावे नित्त।
और न कोई सुन सकै कै साई चित्त।।[122]

एस० एन० टैगोर द्वारा रबाब को रूद्रवीणा ही माना गया है व प्रज्ञानन्द स्वामी द्वारा रबाब का निर्माण वीणा के आधार पर होने की बात कही गयी है, जिसमें रबाब का आधार रूद्र वीणा को माना है।[123] स्वामी प्रज्ञानन्द की पुस्तक Historical Development of Indian Music में वर्णित है, कि फारस तथा अफगान क्षेत्र में रूद्र वीणा को ही रबाब कहकर सम्बोधित किया जाता था, परन्तु इसे अरब क्षेत्र में रूबाब नाम से पुकारा जाता था।[124] साथ ही यह भी ज्ञात होता है, कि 10वीं शताब्दी के आस–पास रबाब नामक वाद्य अरब आदि देशों में पाया जाता था, परन्तु वह एक प्रकार का गज वाद्य था। भारतीय रबाब का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यह वर्तमान में प्रयुक्त होने वाले सरोद वाद्य तथा सांरगी के मध्य का वाद्य प्रतीत होता है।

(122) कबीर / वाचनामृत / 20
(123) Swami Pragyanand/Historical Development of Indian Music/pg.384
(124) Swami Pragyanand/Historical Development of Indian Music/pg.384

यह अवश्य माना जा सकता है, कि तानसेन के वंशजों द्वारा रबाब को शुद्धता प्रदान करने हेतु, प्राचीन वीणाओं के आधार पर कुछ पाविर्तन किए गए होगें। रबाब के विषय में प्राप्त अहोबल व राणा कुम्भा का वर्णन आपस में समानता रखता है। संगीत सार के अर्न्तगत रबाब वाद्य के आकार–प्रकार की जानकारी भी प्राप्त होती है, जो किसी अन्य ग्रन्थकार, विद्वान व अष्टछाप कवियों द्वारा प्रस्तुत नहीं की गयी है।

संगीतसार का वर्णन इस प्रकार है–

"यह रबाब एक हाथ के लम्बे कटहल के काठ को कीजिए । तहाँ एक काठ को आधे तुम्बा कठौता चाम सों मढ़िए और कठौता की सनमुख कोर में सात छेद करि सात ताँति बाँधि डण्डा के अग्रभाग में खूँटी ढीली गाढ़ि के सातों तातनि के अग्र भाग बाँधिए । उन सातों तातनि में षड्जादि सातों स्वर क्रम से राखिए । हाथी दाँत के टूक सों ताँति बजाइए। बायें हाथ से मढ़े चाम को बजाइए । यामें मृदंग के से पाठाक्षर जानिए ! इहाँ कोऊ आचार्य पहले चार तांर में मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद – यह चार स्वर पिछले तीन तातनि में षड्ज, रिषभ, गान्धार यह तीनें भेद क्रम कहे हैं।"(125)

पं० अहोबल द्वारा प्रस्तुत वर्णन इस प्रकार है–

रवं वहति यद्यस्मात्ततो रवावहः स्मृतः ॥125॥
पूर्वोक्त पञ्चवद्दीर्घः स तु फालः सदारुजः ।
अत्र देशे ततानद्धः सप्ततन्त्री तथा मतः ॥126॥

स्फालनं दाशिकेन स्यात्तत्र स्युः पट्टतन्तवः।
मस्वरादीन्ददत्याः सप्तस्वरादीन्द्वितीयका ॥127॥
सर्वासामपि तन्त्रीणामयमेव क्रमो भवेत् ॥128॥(126)

इसके अतिरिक्त कर्ट सेक द्वारा वर्णित किया गया है, कि अरब क्षेत्र के राष्ट्रों में दो तरह के रबाब प्रचलन में थे, परन्तु दोनों ही प्रकारों को गज की सहायता से बजाया जाता था। साथ ही इनका प्रयोग संगत वाद्य के रूप में होने का वर्णन किया है।(127) रबाब के इस प्राप्त स्वरूपों में एक तार, दो तार, चार तार आदि का प्रयोग स्वर के अनुसार किया जाता

---

(125) संगीत सार / राणा कुम्भा / भाग–2 / पृ०–74
(126) संगीत पारिजात / वाद्यप्रकरण / रवावह अ़ / पाण्डुलिपि
(127) The History Of musical Instruments/Sachs Dr.Curt/p.255

था। कुछ रबाब इस प्रकार के भी प्राप्त हुए है, जिन्हें हड्डी के आघात बजाया जाता था, इस प्रकार के रबाब का वर्णन अधिकतर अफ़गानिस्तान, काबुल आदि क्षेत्र में प्राप्त होते थे।

भारत के प्राचीन स्थानों, मन्दिरों आदि में जो मूर्तियाँ है, उनमें जो स्पष्ट वाद्य दिखाई देता है, वह चित्रा वीणा कही गयी है। चित्रा वीणा के साक्ष्य भरत मुनि के काल से भी पूर्व के प्राप्त होते है। इस चित्रा वीणा को देखा जाए, तो यह पूर्ण रूप से रबाब के समान ही दिखाई देता है। यही चित्रा वीणा अरबी संगीतज्ञों द्वारा रबाब के रूप में प्रस्तुत होने की बात पं० लालमणि मिश्र जी द्वारा भी स्वीकार की गयी है।[(128)] परन्तु अरब के रबाब तथा भारतीय रबाब के मध्य एक भारी भेद देखने को मिलता है क्योंकि अरबी रबाब गज के द्वारा तथा भारतीय रबाब कोण अर्थात् विशेष त्रिकोण के माध्यम से बजाया जाता है। गज वाले रबाब का प्रयोग अधिकतर अरब के लोक–संगीत में प्रयुक्त होता था तथा उसी का एक प्रकार भारत स्थित राजसथान के ग्रामीण इलाके में होता है। इस प्रकार साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सका है कि रबाब एक भारतीय वाद्य है, जो चित्रा वीणा में ही कुछ परिवर्तनों के साथ विकसित हुआ तथा अरबी, फारसी आदि के द्वारा इससे मिलते जुलते वाद्य के कारण भारतीय वाद्य को अरबी वाद्य के रूप में प्रचार करना अरम्भ किया गया।

शोधार्थी को तथ्यों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि रबाब भी बाहरी आक्रान्ताओं के कारण प्रभावित हुआ, एक भारतीय वाद्य है, जो कि पं० लाल मणि मिश्र जी द्वारा प्रस्तुत चित्रों के द्वारा सिद्ध होता है। चित्रा वीणा का प्राचीन चित्र देखने से ही ज्ञात होता है कि यह रबाब व सरोद का ही प्राचीन रूप है, परन्तु प्रकाश महाडिक जी द्वारा इस तथ्य का समर्थन नहीं प्रस्तुत किया गया है क्योंकि प्रकाश महाडिक जी के अनुसार चित्रा वीणा मध्यकाल के आरम्भ में ही लुप्त हो गयी थी, जिस कारण पं० शारंगदेव जी द्वारा भी मात्र नाम का ही उल्लेख प्रस्तुत किया गया है।[(129)] वर्तमान में यह वाद्य किसी वाद्य परम्परा में अधिक प्रचार में नहीं है, भारत के कुछ भागों में यह अवश्य ही देखने को मिलता है, कुछ विद्वानों रबाब को कश्मीरी वाद्य के रूप में स्वीकारा गया है व पंजाब के भी कुछ भागों मे

(128) मिश्र पं० लालमणि / भारतीय संगीत वाद्य / पृ०–50
(129) महाडिक प्रकाश / भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य / पृ०–65

इसका वादन गुरमत संगीत के अर्न्तगत प्राप्त होता है, इस कारण रबाब को पूर्णतः लुप्त नहीं माना जा सकता है।

5.2.4.2 सुरसिंगार

सुरसिंगार को मोहम्मद करम इमाम द्वारा हिन्दुस्तानी वाद्य होने की बात कही गयी है।[(130)] मोहम्मद करम इमाम इसे अति मधुर सुरीला साज कहते है, जिसके निर्माणकर्ता तानसेन के वंशज प्यार खाँ को बताया है, जो स्वंय रबाब वादक थे। साथ ही महाराष्ट्र के ज्ञानकोश में भी यह तथ्य प्राप्त होता है, कि नवाब वाजिद अली शाह, जो कि लखनऊ नवाब के रूप में जाने जाते है, के उस्ताद प्यार खाँ द्वारा सुासिंगार को बनाया गया था।[(131)] परन्तु एच० पोपले द्वारा रामपुर के नवाब कल्वे अली खाँ बहादुर को सुरसिंगार का अविष्कारकर्ता स्वीकारा गया है।[(132)]

''द स्टोरी ऑफ इंड़ियन म्यूजिक'' में ओ० गोस्वामी द्वारा लिखा गया है, कि बनारस के दरबार में तानसेन के वशंज निर्मल शाह तथा जाफ़र शाह की संगीत सभा का कार्यक्रम आयोजित किया गया था, जिसमें निर्मल शाह द्वारा वीणा वादन का सफल कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया, परन्तु मौसम के कारण रबाब वादन, जो कि जाफ़र खाँ द्वारा प्रस्तुत किया जाना था, वह प्रस्तुत नहीं किया जा सका, क्योंकि मौसम के कारण रबाब पर लगी चमड़ें की चादर नर्म होने गयी थी व स्वरों का निखार नहीं आ रहा था।

जिस कारण जाफ़र खाँ द्वारा सभा को यह कहा गया कि वह एक माह के पश्चात् पुनः कार्यक्रम प्रस्तुत करेंगें। इसके बाद जाफ़र खाँ द्वारा कारिगर से चमड़ें में चादर के स्थान पर धातु की चादर व धातु व पीतल की तन्त्रियों से युक्त नवीन वाद्य का निर्माण करवाया, जिसे सुरसिंगार कहा गया।[(133)] इन सभी तथ्यों से ज्ञात होता है, कि सुरसिंगार भारतीय वाद्य शैली में निर्मित एक भारतीय वाद्य है, जो चित्रा वीणा के आधार पर निर्मित रबाब और रबाब के आधार पर सुरसिंगार का निर्माण हुआ। रबाब की तुलना में सुरसिंगार की चौड़ायी

(130) मआदनुल–मोहम्मद करम इमाम/पृ०59
(131) भारतीय वाद्ये सरदार आबासाहेब मजुदार/केसरी दैनिक समाचार पत्र/दिनांक–13/01/1963
(132) Pople H.A./The Music Of India/pg.-116
(133) Goswami O./The Story Of Indian Music/pg.302-303

कुछ अधिक होती है। सुरसिंगार पूरी एक ही लकड़ी द्वारा बनाया जाता है, जिसमें दण्ड़ व निचला भाग, तुम्बा सब एक ही लकड़ी का बना होता है। खूटियों वाला भाग कुछ पतला होता है, दण्ड़ का मध्य भाग धातु की पट्टी से मढ़ा होता है। सुरसिंगार सारिकाओं से रहित वाद्य है व तुम्बे की तबली पर घुडच स्थापित किया जाता है। सुरसिंगार का अग्रभाग जहाँ खूटियाँ होती है, वहाँ एक छोटा तुम्बा स्वरों की रंजकता में बृद्धि हेतु लगाया जाता है। सुरसिंगार में आरम्भ में छः खूटियों से युक्त होता था, जिसे वादकों द्वारा अपनी सुविधा के अनुसार आठ कर दिया गया। वादन हेतु सुरसिंगार को बाएं कंधें पर खूटियों वाले भाग को व दांए हाथ की और निचले तुम्बें वाले स्थान को जान्घ पर रखकर कोण या मिज़राब की सहायता से वादन किया जाता है।

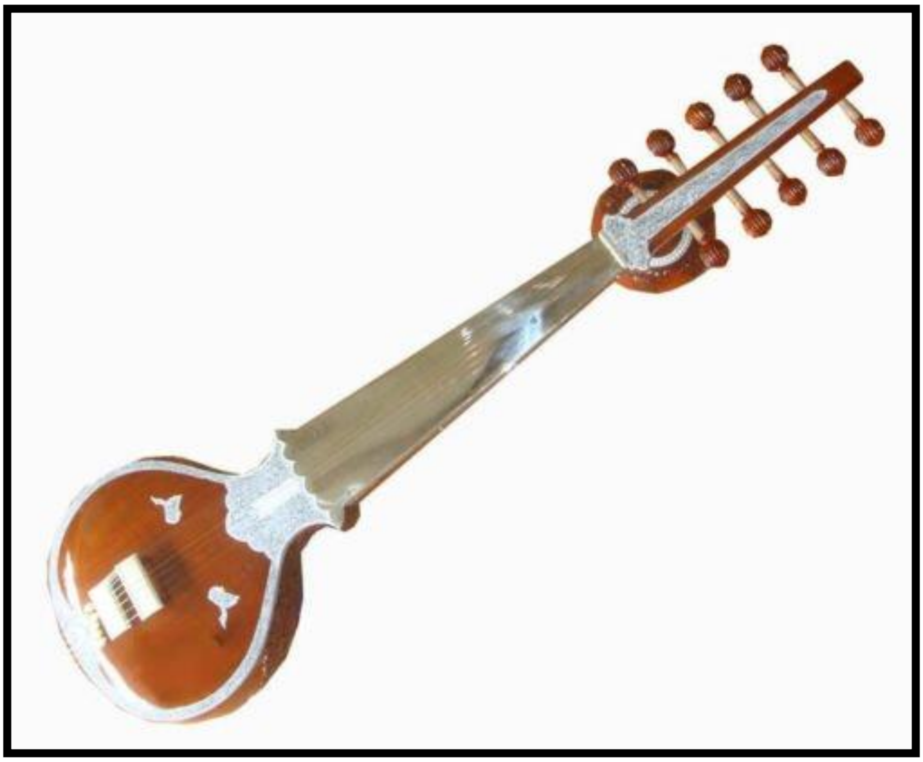

सुरसिंगार

शोधार्थी को प्रस्तुत तथ्यों द्वारा यह ज्ञात होता है, कि सुरसिंगार एक पूर्णतः भारतीय वाद्य है, जो रबाब के ही परिवर्तित रूप द्वारा निर्मित है। प्रकाश महाड़िक द्वारा भी अपनी पुस्तक में यह स्वीकारा है कि यह एक भारतीय वाद्य है, जिसका निर्माण आवश्यकता के अनुरूप रबाब में ही कुछ परिवर्तन के साथ किया गया। वर्तमान युग में सुरसिगार एक अल्प काल में प्रयुक्त हुआ वाद्य है जो आज लुप्त वाद्यों की श्रेणी में आता है।

5.2.4.3 सरोद

सितार के समान ही सुप्रसिद्ध वाद्य माना जाता है। सरोद वाद्य के जन्म को लेकर प्रकार मत–मतांतर पाए जाते है। डॉ० दिनेश चन्द्र गुप्त द्वारा सरोद शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा के शहरूद से हुयी है, जिसका तात्पर्य है–संगीत। जो बाद में सरोद नाम से जाना गया।[134] कुछ विद्वानों के मतानुसार शहरूद दो शब्दों के संयोग से निर्मित शब्द है, शह+रूद जिसे रूद्र वीणा के रूप में स्वीकार किया गया है। शहरूद का अर्थ शाह की रूद्र वीणा कहा है। सरोद का सस्कृत नाम प्रज्ञानन्द स्वामी के द्वारा शारदीय वीणा कहा गया है।[135] एकल वादन में प्रयोग होने वाले वाद्यों में सरोद का नाम सर्वोपरि माना जाता है, जो आधुनिक युग का एक महत्वपूर्ण तन्त्री वाद्य है। सरोद की मधुर तथा गम्भीर ध्वनि रंजकता से परिपूर्ण व कर्णप्रिय होती है। इतिहासविदों व तथ्यों के आधार पर यह चित्रा वीणा के मध्यकालीन स्वरूप रबाब व रबाब के संशोधित रूप सुरसिंगार से निर्मित एक आधुनिक वाद्य है।[136] जो सारंगी के समान ही सारिका रहित वाद्य है।

5.2.4.3.1 सरोद की बनावट

सरोद को तून, सागौन या शहतूत की लकड़ी के टुकड़े को खंडित न करते हुए उसे सरोद के आकार में गहराई में खोदा जाता है[137], जिस कारण मध्य भाग व तुम्बें वाला भाग पूर्ण रूप से जोड़ रहित होता है। सरोद का तुम्बा पूरी तरह से गोल नहीं होता है, यह कुछ आयताकार रूप को धारण किए होता है। वर्तमान में सरोद का तुम्बा आरम्भिक सरोद के तुम्बें से कुछ छोटा होता है। तुम्बे का ऊपरी भाग जहाँ घुडच स्थापित होता है, वह बकरे के पेट की खाल द्वारा मढ़ा जाता है। तम्बें से ऊपर की ओर जाने पर सरोद का ड़ांड़ सकरा होता जाता है।[138] सरोद में जिस स्थान पर खूटियाँ स्थापित की जाती है, उस भाग को पैगबॉक्स कहा जाता है। यह उसी लकडी में छोड़े गए ठोस भाग का ही भाग होता है, इसके दोनों ओर अर्थात् दांए व बांए ओर क्रमशः 3–3 खूंटियों को लगाया जाता

(134) सरोद की उत्पत्ति/डॉ० दिनेश चन्द्र गुप्त/निबंध संगीत/पृ०–168
(135) Swami Pragyanand/Historical Development of Indian Music/pg.384
(136) शर्मा वीना/हिन्दुस्तानी संगीत में तन्त्र वादाकों का योगदान/पृ०–46
(137) मिश्र पं० लालमणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–130
(138) महाडिक प्रकाश/भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य/पृ०–117

है अर्थात् छः मुख्य बडी खूटियाँ लगी होती है। यह पैगबॉक्स सम्पूर्ण सरोद का एक तिहाई भाग का होता है। पैगबॉक्स में लगी यह मुख्य छः खूटियाँ गुलाब की लकडी़ से बनी होती है।[139]

इसके पश्चात् सरोद के मध्य भाग को फिंगर बोर्ड़ कहा जाता है। फिंगर बोर्ड अन्दर से खोखला और उसके ऊपर धातु की चादर को मढ़ा जाता है।[140] इस फिंगर बोर्ड़ के गले पर तारगहन लगा होता है, जो हाँथी के दाँत की बनी पतली पट्टी होती है, इस तारगहन के द्वारा ही सभी मुख्य तार खूंटियों की ओर जाते है, और तुम्बें की खाल पर भी हाँथी दाँत या हिरण की सींग का बना हुआ घुडच स्थापित किया जाता है। घुड़च के आगे ताँबे की पट्टी होती है, जिस पर ताँबे के ही बने कीलनुमा बटन होते है, जो तन्त्रियों की संख्यानुसार बने होते है, जिससे होकर ही तन्त्रियाँ को घुड़च पर रखा जाता है। सरोद में मुख्य छः तन्त्रियाँ, दो चिकारियाँ व नौ से लेकर ग्यारह तरब की तन्त्रियों का स्थापित किया जाता है।

वर्तमान में कुछ वादक अपनी वादन शैली के अनुसार तारों की संख्या को कम या ज्यादा कर वादन प्रस्तुत करते है। पैगबॉक्स के दोनों ओर लगे मुख्य तारों की खूटियाँ लगी होती है व फिंगर बोर्ड के दांए ओर तरब की व चिकारी की तन्त्रियों खूटियों को स्थापित किया जाता है, सरोद का वादन हेतु, जवा का प्रयोग किया जाता है, जो पके हुए नारियल की लकड़ी द्वारा त्रिकोणाकार आकृति में बनाया जाता है। सरोद एक गम्भीर प्रकृति का वाद्य है, तन्त्री हेतु तीन प्रकार की धातुओं का प्रयोग किया जाता है– स्टील, पीतल तथा ताँबा, तथा प्रत्येक तन्त्री की मोटाई भी अलग–अलग निश्चित होती है।[141] काल के परिवर्तन के साथ ही सरोद के आकार–प्रकार तन्त्री आदि में भी परिवर्तन निरन्तर होता जा रहा है प्रत्येक वादक द्वारा अपनी वादन क्रिया की शैली की सुविधानुसार नवीन परिक्षण व प्रयोग करते रहते है।

---

(139) महाडिक प्रकाश / भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य / पृ०–117
(140) महाडिक प्रकाश / भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य / पृ०–117
(141) महाडिक प्रकाश / भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य / पृ०–118

सरोद

5.2.4.3.1 उस्ताद अलाउद्दीन खाँ

संगीत के क्षेत्र से जुड़ा हुआ, प्रत्येक व्यक्ति उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के नाम से परिचित है, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जी का जन्म 1870[(142)] में पिता साधू खाँ तथा माता हरसुंदरी जो कि हिन्दु थी, के घर त्रिपुरा के शिवपुर नामक गाँव में हुआ था, जो मुख्य रूप से किसान थे व साथ ही शिव जी भक्त तथा संगीत प्रेमी भी थे और त्रिपुरा के दरबानी रबाब वादक उस्ताद काज़िम अली खाँ के शिष्य भी थे। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जी कुल सात भाई–बहन थे, जिसमें पांच भाई व दो बहन थी।[(143)] इस प्रकार उस्ताद जी को बाल्यकाल से ही संगीत के वातावरण से परिपूर्ण परिवार की प्राप्ती हुई।

(142) गर्ग लक्ष्मीनारायण हमारे संगीतरत्न, संगीत/पृ०–417
(143) बसंत/संगीत विशारद/पृ०–508

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ तथा उनके पिता दोनों ही उस्ताद काजिम अली खाँ जी का रबाब सुनने हेतु दरबार जाया करते थे। इस प्रकार उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जी को अपनी बाल्यावस्था में ही ताल तथा स्वर का बोध होना अरम्भ हो गया था। इसके पश्चात् वह कलकत्ता संगीत की शिक्षा प्राप्त करने हेतु जा पहुँचें। वहाँ उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जी द्वारा फिडिल, स्टाफ नोटेशन तथा शहनाई की शिक्षा प्राप्त की गयी। तत्पश्चात् रामपुर दरबार में उस्ताद अहमद अली खाँ का सरोद वादन सुना और फिर उन्हीं के शिष्य बने व सरोद वादन की शिक्षा ग्रहण की, जिसके बाद वह रामपुर, जो संगीत का केन्द्र माना जाता था, के दरबार के वजीर खाँ को सुना और बाद में नवाब के अनुरोध पर ही वज़ीर खाँ द्वारा अलाउद्दीन खाँ जी को शिष्य स्वीकारा गया और संरक्षण तथा शिक्षण दोनों ही प्राप्त हुए। अलाउद्दीन खाँ जी की लगन व इच्छा को देखते हुए उस्ताद वजीर खाँ द्वारा संगीत की उच्च्य तालीम प्रदान की गयी, जिसके बाद गुरू की आज्ञानुसार संगीत कला के प्रदर्शन हेतु भ्रमण पर निकल गए और मैहर रियासत में 150 रूपय प्रतिमाह के वेतन पर राज संगीतज्ञ के पद पर नियुक्त हुए।[(144)] और बाद में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जी के सरोद वादन से प्रभावित होकर ही मैहर के राजा ब्रजनाथ द्वारा उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जी को अपना गुरू बनाया गया और गंडाबन्ध शार्गिद बने तथा साथ ही मैहर बैड़ की भी स्थापना की। इसके पश्चात् उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जी के अनेकों शिष्य हुए, जिन्हें बाबा अलाउद्दीन खाँ जी द्वारा पूरे हृदय से संगीत की शिक्षा प्रदान की गयी।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जी के पुत्र अली अकबर खाँ जी द्वारा स्वंय भी अपने पिता द्वारा सरोद वादन की शिक्षा ग्रहण की गयी, पढायी–लिखायी में विशेष रूचि न होने के कारण वह मैट्रिक के पश्चात् सरोद वादन करने लगे, पुत्री अन्नपूर्णा देवी जी द्वारा भी बाल्यकाल से ही संगीत की शिक्षा अपने पिता से प्राप्त हुयी और वह सुरबहार की सुप्रसिद्ध कलाकार के रूप में अपनी पहचान स्थापित करी। इसके पश्चात् पं० रविशंकर जी को उस्ताद अलाउद्दीन खाँ द्वारा अपने ही घर में सितार की शिक्षा हेतु रखा गया, जिन्होनें वादन के लिए परिश्रम तथा लगन द्वारा जल्दी ही बाबा के हृदय में अपना स्थान बना लिया और

(144) बसंत / संगीत विशारद / पृ०–508

वादन कला के सौन्दर्यात्मक स्वरूप से आकर्षित होकर बाबा द्वारा अपनी पुत्री अन्नपूर्ण देवी का विवाह सितार वादक पं० रविशंकर जी द्वारा कर दिया गया।

इसके अतिरिक्त पन्नालाल घोष, जतिन भट्टाचार्या जैसे इत्यादि महान संगीतज्ञों को संगीत की शिक्षा प्रदान की गयी बाबा अलाउद्दीन खाँ द्वारा 84 वर्ष की आयु में भी अपने अभ्यास के क्रम को निरंतर बनाए रखा। बाबा अलाउद्दीन खाँ का स्वभाव से अत्यंत, विनम्र, दयालु, अनुशासन पसंद तथा धार्मिक थे। 6 सितम्बर 1972 को इस महान संगीतज्ञ, महान गुरू व महान विद्वान का स्वर्गवास होगया।

5.2.4.3.3 उस्ताद अमजद अली खाँ

आधुनिक काल में सरोद के सुप्रसिद्ध मूर्धन्य कलाकार उस्ताद अमजद अली खाँ जी को किसी भी परिचय की अवश्यकता नहीं है, क्योंकि सरोद वादन ही उस्ताद जी की पहचान व परिचय का वर्णन प्रस्तुत करता है। उस्ताद जी के जन्म के विषय में कहा जाता है, कि 9 अक्टूबर 1945 को उस्ताद हाफिज़ अली खाँ के घर जो ग्वालियर में स्थित था, में हुआ था। उस्ताद जी को एक प्रतिष्ठित संगीतज्ञ परिवार में जन्म मिला, जो कि सेनिया वंश की छठी पीढ़ी के तौर पर संगीत की सेवा में सर्म्पित थे। जिस कारण उस्ताद जी की सांगीतक शिक्षा अपने पिता गुरू द्वारा ही प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस्ताद जी द्वारा बाल्यकाल से ही अपने जीवन का लक्ष्य निधारित कर सरोद वादन की तपस्या में लीन हो गए। उस्ताद जी द्वारा संगीत निर्देशन का भी कार्य किया गया, जिसमें ''स्पर्श'' नामक फिल्म में सरोद का वादन प्रस्तुत किया है।[145]

उस्ताद जी को सरोद वादन के लिए कई महान सम्मानों द्वारा समय–समय पर सम्मानित भी किया गया। उस्ताद जी को यूनेस्को की ओर से इंटरनेटशनल म्यूज़िक फोरम पुरस्कार, तानसेन पुरस्कार, संगीत नाटक आकादमी द्वारा आकादमी पुरस्कार, पद्मश्री, पद्मभूषण तथा पद्मविभूषण जैसे महान पुरस्कारों द्वारा नवाज़ा गया। उस्ताद अमज़द अली खाँ भारत सरकार तथा कनाड़ा सरकार के संयोग द्वारा गुलज़ार जी के नेतृत्व में वृत्तचित्र अर्थात् ड़ॉक्यूमेंट्री फ़िल्म का भी निर्माण कराया गया। उस्ताद जी के दो पुत्र है, जो दोनों ही

(145) शर्मा वाना / हिन्दुस्तानी संगीत में तन्त्र वादकों का योगदान / पृ०–124

सरोद वादन तथा संगीत के क्षेत्र में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह कर रहें है। इसके अतिरिक्त उस्ताद जी के कई शिष्य भी है। उस्ताद जी द्वारा कई नवीन रागों का भी निर्माण किया गया जिनमें, प्रियदर्शनी, कमलश्री, हरिप्रिया, शुभलक्षणी, जवाहर मंजरी, अमीरी तोड़ी इत्यादि राग सम्मिलित है।

उस्ताद जी द्वारा अपने पैतृक निवास स्थान को एक संग्रहालय के रूप में संगीत जगत को सर्मपित कर दिया गया है। वर्तमान में इस स्थान को सरोद घर के नाम से जाना जाता है। उस्ताद जी का यह पैतृक निवास कई महान संगीतज्ञों, गुरूओं, विद्वानों आदि की स्मृतियों को अपने में संजोय हुए है। यह एक ऐसे पवित्र स्थान के रूप में देखा जाता है, जो कई संगीतज्ञों के वादन, विचारों व उनके स्वरों द्वारा जिस सांगीतिक ऊर्जा का निर्माण किया गया, वह सभी इस स्थान को पवित्र व पुण्य बनाती है। उस्ताद जी द्वारा कहा गया है कि ''मैं संगीत के लिए जीवित हुँ और संगीत के लिए ही जीवित हुँ, मेरे जीवन का लक्ष्य अपनी कला के प्रति भक्ति और समर्पण है।''[(146)] उस्ताद जी द्वारा पिता के स्वर्गवास के पश्चात् ''द इण्यिन म्यूजिक सोसायटी'' की नींव डाली गयी, जो प्रत्येक वर्ष सरोद वादक उस्ताद हाफिज़ अली खाँ की बरसी पर संगीत कार्यक्रमों का अयोजन करती है।[(147)] इस प्रकार उस्ताद अमजद अली खाँ जी एक परम्परावादी सरोद वादक होने के साथ–साथ नवीन तथा रचनात्मक स्वभाव के धनी कलाकार है।

उस्ताद जी द्वारा सरोद को गायकी अंगी को अंगीकृत भी किया गया है। उस्ताद अमजद अली खाँ जी द्वारा किया जा रहा, संगीत जगत का यह योगदान अतुल्नीय है, ईश्वर अपनी कृपा द्वारा उस्ताद जी को स्वास्थपूर्ण जीवन प्रदान करें।[(148)]

3.5.2.5 विपंची

विपंची वीणा प्राचीनतम वीणाओं में से है, जिसका वर्णन मध्यकाल तक प्राप्त होता है, परन्तु प्रयोग तथा वादन शैली के रूप में विपंची वीणा का महत्व मध्यकाल की अपेक्षा प्राचीनकाल

(146) हिन्दुस्तानी संगीत में तन्त्र वादकों का योगदान / शर्मा वीना / पृ०–124
(147) मध्य वर्ग / नाडकर्णी मोहन / पृ०–67
(148) शर्मा शान्तनु / प्रतिष्ठत सितार एंव सरोद वादकों की साधना और संघर्ष / पृ०–138–142

में अधिक प्राप्त होता है। विपंची का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार से प्राप्त होता है, कि उपसर्ग से **पचिविस्तारे** धातु द्वारा प्राप्त हुआ है तथा पचि अर्थात् विस्तार करना।

विपंचयति विस्तारा यति शब्दम् इति विपंची।।

अर्थात्– विपंची उसे कहा जाता है जो, ध्वनि को विस्तृत रूप प्रदान करें।

पंयताद च तथा **गौरादित्वात** पर **ङ़ीष** का प्रत्याय स्थापित करने से विपंची के अर्थ का ज्ञान होता है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि विपंची वीणा की विशिष्ट प्रकार की ध्वनि को प्रस्फुटित करती है अर्थात् विशिष्ट गूंज से युक्त होती है।

विपंची परिगृहान्या नियता नृत्यशालिनी।
निद्रावशमनुप्राप्ता सहकान्तेव भामनी।।(149)

अर्थात्– एक नृत्यांगना विपंची वीणा को आलिंगन करते हुए अर्थात् गले लगाकर निद्रा में लीन है, मानो जैसे कोई भामनी अपने पति को आलिंग में लेकर सो रही हो।

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में भी विपंची वीणा का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जैन ग्रन्थों में जिन साठ वाद्यों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, उसमें विपंची वीणा का भी नामोल्लेख प्राप्त होता है। भरत मुनि द्वारा विपंची वीणा को मुख्य अर्थात् अंग वीणा कहा गया है, साथ ही विपंची वीणा का उल्लेख भी कई बार किया है।(150) नाट्यशास्त्र में प्रस्तुत वर्णन इस प्रकार है–

एंव तज्ज्ञैया वीणा वाद्ये तु धातवः प्रोक्ता।
वक्ष्येऽधुना विपंचीवाद्यविधाने तु करणार्धम्।।(151)

वमेतत् स्वरगतं ज्ञेय वीणा शरीरजम्
विपंचीवाद्यविधाने करणानि त्रिबोधत(152)

इस प्रकार भरत मुनि द्वारा करणों तथा धातुओं के वादन का विपंची वीणा पर किए जाने का वर्णन प्रस्तुत किया है।

---

(149) महर्षि बाल्मीकी–रामायण/सुन्दरकाण्ड़/सर्ग–10/श्लोक–41
(150) नाट्यशास्त्र–भरतमुनि/शास्त्री बाबूलाल शुक्ल/अध्याय–34/श्लोक–14
(151) नाट्यशास्त्र–भरतमुनि/शास्त्री बाबूलाल शुक्ल/अध्याय–29/श्लोक–107
(152) नाट्यशास्त्र–भरतमुनि/शास्त्री बाबूलाल शुक्ल/अध्याय–29/श्लोक–112

सप्ततन्त्री भवेच्चित्र विपंची तु भवेन्न।।
कोणावाद्या विपंची स्याच्चित्र चाङ्गलिवादनात[153]

अर्थात्– भरत मुनि द्वारा यह भी स्वीकारा गया है कि, विपंची वीणा सात तन्त्रियों से युक्त है, जिसे कोण की सहायता से वादन किया जाता है।

तदुपजीवकत्वेनापरा भवन्तीति तदेनद दर्शयति।।[154]
विपंची प्रत्यंङ्गनोपलक्षणम्।
तेन विपंचो वाद्ये–वादयन्ते यान्युक्तरिभितादि।।

करण मुख्यवीणावाद्योंपरजकानी वादनवैचित्यणि।।
तानि बुध(ध्य)ध्वर्मित सम्बन्ध।।[155]

प्रस्तुत श्लोक के अर्न्तगत अभिनव गुप्त जी द्वारा विपंची वीणा तथा चित्रा वीणा को मत्तकोकिला की सहायक व उपजीवनी कहकर सम्बोधित किया है, क्योंकि विपंची वीणा की गणना प्रत्यंग वाद्यों में की गयी है। अभिनव गुप्त जी विपंची वीणा को अपूर्ण वाद्य के रूप में स्वीकार करते है, जिसका वादन कोण की सहायता से किया जाता है।

मतंङ्गों वादकस्तस्याश्चौत्रिको नामनापरः।
स्वातिवैपंचिकः ख्यातो निर्ममे पुष्कणियः।।[156]

इस श्लोक के अनुसार नान्यदेव द्वारा कहा गया है, कि मतंग मुनि विपंची वीणा का वादन करते थे, जिस कारण मतंग मुनि को चैत्रिक कहा जाता था व स्वाति मुनि को वैपंचिक नाम से सम्बोधित किया गया है। नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में एक वर्णन प्राप्त होता है कि, ब्रह्मा जी द्वारा स्वाति मुनि तथा उनके शिष्यों को वाद्य–वादन तथा उनके निमार्ण के लिए नियुक्त किया, जिसके पश्चात् स्वाति मुनि द्वारा त्रिपुष्कर वाद्यों की रचना की गयीं व अन्य कई वाद्यों का भी अविष्कार हुआ। स्वीति मुनि को विपंची वीणा वादक के रूप में भी स्वीकारा जाता है।

विपंच्यानवतन्त्रीपु स्वरासप्त तथापरौं।
काकलान्तरसंज्ञो चः द्वौ स्वरावित्यामानि च।।

---

(153) नाट्यशास्त्र–भरतमुनि / शास्त्री बाबूलाल शुक्ल / अध्याय–29 / श्लोक–118
(154) अभिनव भारती– अभिनव गुप्त / पृ०–112
(155) अभिनव भारती– अभिनव गुप्त / अध्याय–29 / श्लोक–112
(156) भरतभाष्य–नान्यदेव / भरतकोश / पृ०–628

एंव मतंगऽस्वेशास्ये प्रोक्तवान् यत्रिदार्शितम्।।[157]

विपंची वीणा में नौ तन्त्रियां होती है, जिन्हें सात स्वरों तथा अन्तर गंधार व काकली निषाद में मिलाया जाता है।

अष्टौ द्वादशतन्त्रयश्च यासां तन्त्रश्शतं तथा।
तास्सर्वा यज्ञांयोगिन्यो वीणा वीणादनामिका।।[158]

वह सभी वीणाऐं जो आठ, बारह या सौ तन्त्रियों के युक्त होती है, वह सभी यज्ञ आदि में प्रयोग होती है। इस प्रकार ज्ञात होता है, कि यज्ञ आदि में उपयोग की जाने वाली वीणाएं व अन्य प्रस्तुति के लिए उपयोग की जाने वाली वीणाएं, दोनो भिन्न व दोनों के अपने–अपने निर्धारित नियम थे, क्योंकि यज्ञों आदि में वादित होने वाली वीणाएं अत्यन्त प्राचीन थी, जिस कारण गंधर्व गान आदि में रंजकता उत्पन्न करना कठिन प्रतीत होता था, इन्हीं प्राचीन वीणाओं में कुछ परिवर्तन कर रंजकता के अनुरूप इन वीणाओं का निर्माण किया गया।

इससे यह ज्ञात होता है कि विपंची वीणा एक प्राचीन वीणा थी, जो रामायण काल, बौद्ध काल में प्रयोग की जाती थी। भरत मुनि के काल में विपंची वीणा को अंग वीणा के रूप में स्थापित किया गया, परन्तु किसी भी वादक या विद्वान द्वारा विपंची वीणा के आकार–प्रकार के विषय में कुछ भी वर्णन ग्रन्थों में प्रस्तुत नहीं किया गया है। मात्र मूर्तिकला के अन्तर्गत मूर्तियों के आधार पर ही विपंची वीणा के आकार–प्रकार की पुष्टी की जाती है व प्राप्त तथ्यों के आधार पर विपंची वीणा के वक्राकार होने व नौ तन्त्रियों के होने की बात को स्वीकारा जाता है।

पं० शारंगदेव जी द्वारा विपंची वीणा का उल्लेख संगीत रत्नाकर में किया गया है कि मध्यकाल के विद्वानों के द्वारा विपंची वीणा के विषय में कोई भी तथ्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। इन विद्वानों में पार्श्वदेव, कुम्भा, नारद, हरिपाल तथा सामनाथ आदि द्वारा विपंची वीणा के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया गया है, परन्तु सुधाकलश, हम्मीरदेव, परमेश्वर, तुलजेन्द्र, विद्याविलासी, शुभांकर व उमापति द्वारा अपने ग्रन्थों में विपंची वीणा को स्थान

(157) भरतभाष्य–नान्यदेव / भरतकोश / पृ०–628
(158) भरतभाष्य–नान्यदेव / भरतकोश / पृ०–628

दिया गया है। इस प्रकार मात्र नामोल्लेख ही मध्यकाल में अधिकतर प्राप्त होता है। सभी ग्रन्थकारों व विद्वानों द्वारा नौ तन्त्रियों के होने की बात को स्वीकारा गया है।

विपंची वीणा[159]

एषैव तु विपंचीस्याद्विशेषो विनिगधते।
इत्यादि लक्षणापेता रौद्रयेव तु विपंचिका।।[160]

पं० गजपति नारायणदेव द्वारा विपंची वीणा को रूदे वीणा कहा है, सात स्वरों के अतिरिक्त जिप दो स्वरों के विषय मे विपंची वीणा के लिए कहा गया है कि ककुभ में बांयी ओर से दो अतिरिक्त पत्तियों को स्थापित किया जाता है, यह पत्तियां लौ धातु द्वारा निर्मित होती है व इनके लिए दो अलग से सारिकाओं को भी बांधा जाता है। इस प्रकार इन सभी गुणों के युक्त रूद्र वीणा को विपंची वीणा माना जाता है।

विपंची नवभिः ख्यातारम्या।

(159) मिश्र लालमणि/भरतीय संगीत वाद्य/चित्र सं०–1/पृ०–1
(160) संगीत नारायण/नारायणदेव पं० गजपति/वाद्याध्याय/श्लोक–66–69

नादब्रह्मसमाश्रित गुणमयी केषां भवेन्नोप्रिया।।(161)

एस० एन० टैगोर द्वारा अपनी पुस्तक यंत्रकोश, जो एक बंगाली भाषा में रचित पुस्तक है, में वर्णित है, कि विपंची वीणा किन्नरी वीणा के ही समान है। विपंची वीणा का तुम्बा अलाबु अर्थात् कद्दू द्वारा निमिर्त होता है, न कि किसी धातु के द्वारा। इसके अतिरिक्त समस्त लक्षण, आकार–प्रकार, सारिका, तन्त्रियां आदि सभी किन्नरी वीणा के ही समान स्वीकारा है व टैगोर जी के अनुसार विपंची वीणा सात तन्त्रियों से युक्त है व यह भी कहा है, कि पूर्व में विपंची वीणा सप्त तन्त्रियों से युक्त थी, परन्तु वर्तमान में पाँच तन्त्रियों से अधिक प्रयोग नहीं होते है। टैगोर जी के वर्णन को पूर्ण रूप से प्रमाणित नहीं स्वीकारा जा सकता है, क्योंकि प्राप्त तथ्यों के आधार से यह ज्ञात होता है कि विपंची वीणा नौ तन्त्रियों से युक्त थी व सारिका विहीन थी व प्राचीन विपंची के मूल स्वरूप के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

इस प्रकार वादन विधि के लक्षणों के अनुसार विपंची वीणा को अंगुलियों के द्वारा बजाए जाने पर वह स्वरमंडल के सादृष्य होने का भान होता है व कोण आदि के द्वारा बजाए जाने पर वह कानून तथा संतूर वाद्य के समान जान पडती है। इस प्रकार मत्तकोकिला जो इक्कीस तन्त्रियों से युक्त थी। मध्यकाल के उत्तरार्ध में स्वरमण्ड़ल कही जाने लगी व त्रितन्त्री वीणा को तम्बूरा व सितार के रूप में स्वीकारा जाने लगा। विपंची वीणा का स्थान कानून व संतूर को प्राप्त होने लगा।(162)

5.2.5.1 संतूर

अध्ययन के पश्चात् शोधार्थी को ज्ञात होता है कि विपंची वीणा मत्तकोकिला के काफी निकट की वीणा थी, जिस कारण समय के साथ बदलते स्वरूप में प्राप्त होती गयी, विपंची वीणा स्वरमंडल, संतूर तथा कानून वाद्य आकार में समान दिखाई पड़ते है और स्वरूप के साथ–साथ वादन का तरीका भी एक जैसा प्रतीत होता है। सुप्रसिद्ध स्व० पं० शिवकुमार शर्मा जी के अथक प्रयास द्वारा कश्मीर का लोकवाद्य संतूर को विश्व के पटल पर स्थापित किया गया। पं० शिवकुमार शर्मा जी द्वारा प्रकाश महाड़िक जी के साथ एक साक्षात्कार में

(161) रसकौमुदी–श्रीकण्ठ / अध्याय–2 / श्लोक–8–21 / पृ०–95
(162) भारतीय संगीत वाद्य / मिश्र लालमणि / पृ०–53

यह कहा गया है कि संतूर वाद्य शततन्त्रि वीणा अर्थात् सौ तन्त्रियों वाली वीणा जो कि एक अत्यन्त प्राचीन वीणा है का स्वरूप है।

विश्व का कोई भी वाद्य सौ तन्त्रियों से युक्त नहीं है और इस तथ्य का भी पूर्णतः से खण्डन किया कि संतूर एक विदेशी या ईरानी वाद्य है।[163] परन्तु, विपंची वीणा के निकट होने की बात पं० लालमणि मिश्र जी द्वारा कही गयी है। इस तथ्य को भी पूर्ण रूप से नकारा नहीं जा सकता है क्योंकि, विपंची वीणा को गोद में रख कर बजाए जाने से सम्बन्धित तथ्य भी देखे जा सकते है। साथ ही तन्त्रियों को सूर करने की विधि संतूर तथा विपंची की समान प्रतीत होती है, क्योंकि दोनों में ही प्रत्येक स्वर के लिए एक तन्त्री का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् सूंतर में जिस प्रकार प्रत्येक स्वर के लिए अलग–अलग तन्त्रियों का प्रयोग होता है, परन्तु संतूर वाद्य में चार–चार तन्त्रियों पर एक स्वर मिलाया जाता है, जिससे कुल पच्चीस स्वरों की प्राप्ती होती है। उसी प्रकार विपंची वीणा में भी प्रत्येक स्वर के लिए एक तन्त्रि को रखा जाता है, विपंची वीणा में कुल नौ तन्त्री होने के कारण नौ स्वरों की ही प्राप्ती होती है। शोधार्थी को अध्ययन के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है, कि जिस प्रकार नान्यदेव जी द्वारा कहा गया है कि आठ, बारह और सौ तन्त्रियों वाली वीणा का प्रयोग यज्ञ आदि के सम्बन्ध में होता था, तो यह भी सम्भव है कि समान जनमानस के रंजन हेतु तन्त्रियों की संख्या में कुछ परिवर्तन हुए हो और प्रत्येक स्वर के लिए एक तन्त्री के आधार पर ही विपंची में नौ तन्त्रियों की व्यवस्था की गयी हो।

इसी प्रकार वर्तमान में प्रयोग होने वाली वीणा अर्थात् संतूर में प्रत्येक स्वर के लिए चार तन्त्रियों को पुनः रंजकता हेतु स्थापित किया गया हो। कुछ विद्वानों के मतानुसार संतूर एक विदेशी वाद्य है, जो ईरान, फारस, मध्य एशियाई वाद्य है।[164]

5.2.5.1.1 संतूर वाद्य की बनावट

(163) 13/10/1984/इन्दौर में संतूर वादक पं० शिवकुमार शर्मा से लेखक द्वारा की गयी भेंटवर्ता
(164) ग्रोवस संगीत कोश / भाग–16 / पृ०–486

संतूर का आकार लगभग स्वरमडंल के समान ही माना देखा जा सकता है, परन्तु स्वरमंडल का प्रयोग आज–कल मूलतः गायन के साथ किया जाता है अर्थात् गायक द्वारा इच्छित स्वर के गायन में प्रयोग हेतु स्वर दर्शन के लिए किया जाता है, व संतूर वाद्य एकल वाद्य के रूप में स्थापित शास्त्रीय संगीत का महत्वपूर्ण वाद्य है।[165]

संतूर

स्वरमंडल को अंगुलियों की सहायता से व संतूर को कलम रूपी ड़ंड़ियों की सहायता से बजाया जाता है। संतूर चौकोर पेटी के समान आकृति का वाद्य है जिसकी लम्बाई लगभग सवा दो फुट तथा चौडाई ऊपरी भाग की और अर्थात् मन्द्र सप्तक से दो फुट व निचले भाग अर्थात् तार सप्तक की ओर से एक फुट होती है। संतूर को ऊचाँई में लगभग तीन से चार इंच का रखा जाता है। संतूर के दांए ओर छोटी–छोटी कील के समान खूटियों को स्थापित किया जाता है, तथा दाएं ओर तारों को अटकाने वाली कीलें लगायी जाती है। तन्त्रियों के लिए ऊपर के मध्य भाग में कई छोटे–छोटे घुड़च लगाए जाते है। तथा वादकों द्वारा वादन हेतु संतूर को अपनी गोद में रखा जाता है, संतूर का चौड़ी पाटी वाला हिस्सा अपनी ओर व दूसरे हिस्से को बाहरी ओर मुख करके रखा जाता है।[166] संतूर 100 तन्त्रियों के युक्त वाद्य है, जिसमें प्रत्येक स्वर के लिए चार तन्त्रियों को स्थान दिया जाता है

(165) मिश्र पं० लालमणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–132
(166) महाड़िक प्रकाश/भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य/पृ०–126

इस प्रकार कुल 25 स्वरों की ही प्राप्ती होती है, परन्तु कुछ कलाकार व विद्वानों द्वारा तन्त्रियों की संख्या में बृद्धिकर 150 तन्त्रियां कर दी गयी है।[167]

5.2.5.1.2 शिव कुमार शर्मा

पं० शिव कुमार शर्मा का जन्म 13 जनवरी 1938 में संगीत विद्वान पं० उमादत्त शर्मा जी व माता केसर देवी जी के घर एक डोगरा ब्राह्मण परिवार में हुआ।[168] बाल्यकाल से ही संगीत में रूचि होने के कारण अपके पिता जी द्वारा 7 वर्ष की अल्प आयु में कंठ संगीत की शिक्षा देना आरम्भ कर दिया[169] और इसके पश्चात् पं० शिवकुमार शर्मा जी द्वारा तबला, सितार और सरोद सभी का वादन आरम्भ कर दिया, परन्तु एक दिन संतूर की मिठास ने पं० जी के हृदय को छूगया और पं० शिवकुमार शर्मा जी आज विश्व के महान संतूर वादक के रूप में जानें जाते है, व जिनके प्रयासों के मध्यम से ही संतूर को भारतीय शास्त्रीय संगीत में शास्त्रीय वाद्य के रूप में स्थान प्राप्त हुआ इससे पूर्व संतूर को जम्मू क्षेत्र के लोक वाद्य के रूप में ही स्थान प्राप्त था। पं० शिवकुमार शर्मा जी स्वंय भी जम्मू के निवासी थे। पं० जी द्वारा संतूर के विषय में एक साक्षात्कार में कहा गया है कि संतूर का अविष्कार शततन्त्री वीणा के आधार पर हुआ है।[170] संतूर के विषय में शोधार्थी को अन्य विद्वानों के मतानुसार यह भी ज्ञात हुआ है, कि विपंची वीणा के आधार पर संतूर का निर्माण किया गया है। बाद में पं० शिव कुमार शर्मा जी के पिता द्वारा संतूर वाद्य में कुछ सुधार व बदलाव किए गए, जिसके आधार पर उसमें झाला, जोड़ इत्यादि की सुविधाओं को जोड़ा गया, व तारों की संख्या में भी कुछ परिवर्तन किए गए।

यदि पं० शिवकुमार शर्मा जी के स्वभाव की बात करें, तो ज्ञात होता है, कि पं० जी अत्यन्त शान्त व सादे स्वभाव के व्यक्तित्व के स्वामी थे, जिन्होनें अपने जीवन को संतूर वाद्य को विश्व के पटल पर स्थापित करने हेतु, समर्पित कर दिया था, और 1955 में आयी एक फिल्म ''झनक–झनक पायल बाजे'' में संतूर वाद्य को बड़ी खूबसूरती के साथ प्रस्तुत किया। इस समय संतूर वाद्य को शास्त्रीय संगीत से अधिक पार्श्व संगीत में महत्व प्राप्त

(167) महाड़िक प्रकाश/भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य/पृ०–127
(168) State Times/Santoor Maestro Pt.Shiv Kumar Sharma dies at 83/11May 2022
(169) हिन्दुस्तानी संगीत में तन्त्र वादकों का योगदान/शर्मा वीना/पृ०–149
(170) 13/10/1984/इन्दौर में संतूर वादक पं० शिवकुमार शर्मा से लेखक द्वारा की गयी भेंटवर्ता

था। बाद में पं० जी के प्रयासों द्वारा ही शास्त्रीय संगीत में संतूर को अनूठा स्थान प्राप्त हुआ। पं० शिवकुमार शर्मा जी ने पं० हरि प्रसाद चौरसिया के साथ मिलकर कई फिल्मों का संगीत निर्देशन भी किया।[171] पं० जी को 1986 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ, 1991 में पद्म श्री तथा 2001 में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। पं० जी की पत्नी का नाम मनोरमा है तथा पं० जी के दो पुत्र भी है राहुल शर्मा तथा रोहित शर्मा, जिसमें एक पुत्र राहुल पं० जी के साथ कई कार्यक्रमों में संतूर वादन भी प्रस्तुत करते है। पं० शिवकुमार शर्मा जी कुछ विगत महिनों से किडनी खराब होने के कारण डायलिसिस पर थे, और 10 मई 2022 को हृदयाघात से उनका निधन हो गया। संगीत जगत पं० शिवकुमार शर्मा जी के योगदानों के लिय सर्दव ऋणि रहेगा।[172]

5.2.5.1.3 भजन सोपोरी[173]

भजन सोपोरी जी का पूरा नाम भजन लाल सोपोरी है। सोपोरी जी का जन्म पिता पं० शम्भू नाथ सोपोरी के घर 1948 को कश्मीर स्थिति श्रीनगर में हुआ। सोपोरी जी का जन्म एक सांगीतिक परिवार में हुआ था। पितामह पं० संसार चन्द्र सोपोरी तथा पिता पं० शम्भू नाथ सोपोरी दोनों ही संगीत के महान विद्वान, संगीतज्ञ तथा संतूर वादक थे। जिस कारण आपका पालन–पोषण संगीत के परिवेश में ही हुआ, और संगीत शिक्षा पितामह तथा पिता द्वारा ही आरम्भ हुयी। सोपोरी जी द्वारा स्नाकोत्तर कश्मीर विश्वविद्यालय से अंग्रजी साहित्य में पूर्ण किया गया, तथा इलाहाबाद स्थित प्रयाग संगीत समिती से संगीत प्रवीण व पाश्चात् संगीत में स्नातक हेतु, वाशिंगटन विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया। सोपारी जी द्वारा दिल्ली आकाशवाणी में डायरेक्टर ऑफ प्रोग्राम के पद पर भी कार्यरत रहें। देश–विदेश में कई संतूर वादन के कार्यक्रमों को भी प्रस्तुत किया। साथ ही कई डॉक्यूमेंट्री, धारावाहिकों, व फिल्मों में संगीत का निर्देशन भी किया व साथ ही लगभग चार हजार गीतों को अपने संगीत से स्वरबद्ध भी किया, जो विभिन्न भाषाओं में लिखे गए थे।

---

(171) बसंत / संगीत विशारद / पृ०–504
(172) State Times/Santoor Maestro Pt.Shiv Kumar Sharma dies at 83/11May 2022
(173) शर्मा वीना / हिन्दंस्तानी संगीत में तंत्र वादकों का योगदान / पृ०–150–152

सोपोरी जी को कई बड़े–बड़े सम्मान भी प्राप्त हुए जिनमें 1993 में संगीत नाटक अकादमी द्वारा अकादमी पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया, 2004 में भारत सरमार द्वारा पद्मश्री सम्मान द्वारा अलंकृत किया गया, 2009 में सोपोरी जी को बाबा अलाउद्दीन खान पुरस्कार की प्राप्ती हुयी, 2016 में जम्मू और कश्मीर राज्य के द्वारा आजीवन उपलब्धि पुरस्कार प्रदान किया गया, इसके अतिरिक्त दिल्ली रत्न, शिरोमिणि पुरस्कार, शारदा सम्मान इत्यादि सम्मानों व पुरस्कारों द्वारा सम्मानित किया गया। भजन सोपोरी जी का विवाह प्रो० अपर्णा सोपोरी जी से हुआ और आपके दोनों पुत्र अभय रूस्तम सोपोरी तथा सोहराब सोपोरी दोनों ही संगीत तथा संतूर वादन की परम्परा को बढ़ाने के प्रयास में अग्रसर है। संतूर वादन में सर्वप्रथम तरब की तन्त्रियों को प्रयोग करने का कार्य भजन सोपोरी जी द्वारा ही किया गया। चिकारी का भी प्रयोग आरम्भ करने का श्रेय आपको ही जाता है। बुजुर्गों व गुरूओं के आशीष स्वरूप आपके द्वारा सोपोरी–बाज की शैली का निर्माण किया गया।[(174)] सोपोरी बाज के अर्न्तगत 44 सेतुओं को संतूर में स्थान दिया। अन्य शैलियों के अर्न्तगत तीस से ऊपर सेतु प्राप्त नहीं होते है।

इस प्रकार संतूर वादन के क्षेत्र में भजन सोपोरी जी के वादन का अपनी ही अलग शैली है जिसे युगों–युगों तक संगीत के क्षेत्र में याद किया जायेगा और साथ ही उसका अध्ययन भी किया जाएगा। भजन सोपोरी जी लम्बें समय से कैन्सर की बिमारी से ग्रसित थे, जिसका इलाज चल रहा था, परन्तु 2 जून 2022 को तबियत बिगड़ी और संतूर वादक भजन सोपोरी जी का निधन हो गया। [(175)]

5.2.5.2 कानून

कानून वाद्य वर्तमान में किसी भी रूप में प्रचार–प्रसार में नहीं पाया जाता है। मुगलकाल में अकबर के दरबारी विद्वान अबुल फज़ल द्वारा आइन–ए–अकबरी की रचना की गयी, जिसमें अबुल फज़ल द्वारा अकबर के दरबार में मौजूद संगीतज्ञों के विषय में चर्चा प्रस्तुत की है और मीर अब्दुल्ला को कानून वाद्य का वादक स्वीकारा है। कानून वाद्य को कई विद्वानों द्वारा फारस का वाद्य स्वीकारा गया है, परन्तु शोधार्थी को भारत की प्राचीन वीणाओं के

---

(174) शर्मा वीना / हिन्दुस्तानी संगीत में तंत्र वादकों का योगदान / पृ०–151
(175) The Hindu/Pandit Bhajan Sopori, Saint of Santoor, Passed away/p.-1/Date-3June2022

समकक्ष होने की जानकारी प्राप्त होती है। अध्ययन के पश्चात् यह भी ज्ञात होता है, कानून वाद्य महती वीणा, मत्तकोकिला तथा विपंची वीणा के साथ–साथ वर्तमान युग के स्वरमंडल तथा संतूर के समरूप ही प्रतीत होता है, क्योंकि आकार–प्रकार में तो खास अन्तर नहीं ज्ञात होता है, मात्र तन्त्रियों की संख्या में अवश्य अन्तर प्राप्त होता है, क्योंकि कानून वाद्य 28 से 38 तन्त्रियों से युक्त वाद्य है व महती, मत्तकोकिला वीणा आदि की बात करें, तो वह 21 तन्त्रियों के वाद्य है व विपंची नौ तन्त्रियों वाली वीणा है।

कानून

कानून वाद्य में संतूर के समान ही प्रत्येक स्वर के लिए अलग तन्त्री का प्रयोग की व्यवस्था थी। इस प्रकार माना जा सकता है, कि कानून वाद्य स्वरमण्ड़ल तथा संतूर से समानता रखता हुआ वाद्य था। विद्वानों का यह भी मत है, कि विपंची वीणा तथा मत्तकोकिला वीणा कुछ अंशों में अन्य वाद्यों के साथ संगत के लिए प्रयोग किए जाते रहे होगें, क्योंकि इन वाद्यों की बनावट के आधार पर ध्यान से देखा जाए, तो कानून स्वरमंडल तथा संतूर वाद्य तन्त्रियों की संख्या के आधार पर अन्य वाद्यों की रंजकता को बढाने मे सहायक प्रतीत होते है। प्राचीनकाल व मध्यकाल की वीणाओं के आधार पर यह माना जा सकता है, जिसे हाथ व ड़डियों (कलम) दोनों की सहायता से बजाया जाता है। कानून वाद्य के विषय में भी वर्णन अधिक प्रचार न होने के कारण नहीं प्राप्त होता है। भारतीय अधिकतर विद्वान कानून वाद्य का आधार विपंची वीणा को ही मानते है, जिनमें से पं० लालमणि मिश्र जी भी एक है, चाहे इस वाद्य को किसी मुस्लिम काल में बनाया गया हो, परन्तु इस तथ्य को नहीं नकारा जा सकता कि भारतीय संस्कृति विश्व की समृद्ध संस्कृतियों सबसे समृद्ध संस्कृति मानी गयी है।

5.2.6 मत्तकोकिला

मत्तकोकिला एक ऐसी वीणा है, जिसका वर्णन लगभग सभी ग्रन्थकारों व आचार्यों के द्वारा किया गया है। यदि पं० लालमणि मिश्र की भारतीय संगीत वाद्य(176) का अध्ययन करें, तो ज्ञात होता है, कि मत्तकोकिला का सबसे प्रथम वर्णन संगीत रत्नाकर में प्राप्त होता है। साथ ही मत्तकोकिला को नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि की वीणा के रूप में भी स्वीकारा गया है।(177) यदि मत्तकोकिला अर्थ को समझने का प्रयास किया जाए, तो मत्त का अर्थ है– उन्मात, नशे में चूर, पागल इत्यादि अर्थात् एक अलग ही मानसिक स्थिति से सकरात्मक व नकारात्मक दोनों ढ़ंगों से समझा जा सकता है। कोकिला का अर्थ स्पष्ट है– कोयल व कोकिला को ही संस्कृत भाषा में कोयल कहा जाता है।

संगीत के अर्न्तगत कोयल की आवाज़ को सबसे अधिक सुरीली आवाज़ों में स्वीकारा जाता है व कोयल द्वारा ही पंचम स्वर की उत्पत्ति भी शास्त्रकारों द्वारा स्वीकारी गयी है। इस प्रकार यह अर्थ समझा जा सकता है, कि बंसत ऋतु अर्थात् जब धरा खुद का पुष्पों द्वारा श्रृंगार करती है, उस समय कोयल उन्माद होकर व मदमस्त होकर उस श्रृगांरिक अवस्था को अपने संगीत के माध्यम से और अधिक रस से परिपूर्ण कर देती है। इसी सुन्दरता से प्ररित होकर महर्षि बाल्मीकी द्वारा रामायण में वर्णन प्रस्तुत किया गया है कि–

मत्तकोकिला सन्नादैर्नर्तयान्निव पादपान्।
शैल कन्दर निष्क्रान्तः प्रगति इन चानिलः।।(178)

अर्थात्– पहाड़ों की कन्दराओं अर्थात् गुफाओं से एक मधुर ध्वनि का आगमन हो रहा है, जैसे कोई काले रंग की कोयल अत्यन्त ऊंचे स्वरों में गायन प्रस्तुत कर रही हो और उसकी मदमस्त करने वाली ध्वनि की किसी मधुर स्वर वाले वाद्य का काम कर रही हो, जैसे किसी सुरीले वाद्य का वादन हो रहा हो, जो प्रकृति में उपस्थित वृक्षों, पुष्पों आदि को नृत्य करने के लिए प्ररित कर वश में कर लिया हो और स्वंय ही उसे नृत्य की परिभाषा भी समझा रहे हो।

(176) भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–48
(177) भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–49
(178) रामायण/किष्किंधा काण्ड़ सर्ग–1/श्लोक–15

इस प्रकार बसन्त ऋतु का सुन्दर व मोहक वर्णन महर्षि बाल्मीकी जी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। कण्ठ नहीं अपितु किसी वाद्य की विशिष्ट ध्वनि संनाद कही गयी है, जो की मत्तकोकिला के वादन के उपरान्त प्राप्त होती है। महर्षि बाल्मीकी जा द्वारा प्रस्तुत इस सुन्दर वर्णन द्वारा मात्र बसन्त ऋतु, कोयल या मात्र वसुन्धरा का मोहक प्रस्तुतीकरण करना मात्रा नहीं रहा होगा, अपितु इस वर्णन के माध्यम के द्वारा एक वाद्य विशेष का भी सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करना अवश्य ही उनका लक्ष्य रहा होगा, जिससे ज्ञात होता है कि मत्तकोकिला नामक वाद्य रामायण काल में एक अत्यन्त विशेष महत्व रखने वाला वाद्य रहा होगा। जिसे महर्षि बाल्मीकी जी द्वारा सांकेतिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। आचार्य बृहस्पति व प्रो० रामकृष्ण कवि आदि वर्तमान युग के विद्वानों द्वारा स्वीकार किया जाता है, कि मत्तकोकिला भरतमुनि के काल की सबसे मुख्य, श्रेष्ठ तथा प्रधान वीणा थी।

इस प्रकार मत्तकोकिला समस्त वीणाओं में विशिष्ट स्थान रखती थी, परन्तु पंडित लालमणि मिश्र जी द्वारा मत्तकोकिला को पं० शारंगदेव जी के काल की वीणा स्वीकारा है।[179] संगीत रत्नाकर में मत्तकोकिला वीणा के संदर्भ में वर्णित है कि–

तन्त्रीणामेकविंशत्या कीर्तिता मत्तकोकिला।
मुख्येंय सर्व वीणांनाः त्रिस्थानैः सप्तभि स्वरैः।।[180]

अर्थात्– मत्तकोकिला वीणा को समस्याओं के प्रमुख स्वीकारा गया है और वर्णित किया गया है, कि मत्तकोकिला इक्कीस तन्त्रियों से युक्त वीणा है, जिस पर तीनों शतकों का वादन सुगमता से किया जा सकता है व अन्य सभी वीणाओं को प्रत्यंग माना है, व मत्तकोकिला को रंजन करने वाले वीणा कहा है। इस प्रकार एकतंत्री वीणा को सर्वप्रमुख वीणा स्वीकारा गया है, परंतु इक्कीस तन्त्रियों से युक्त होने के कारण मत्तकोकिला के महत्व को भी स्वीकारा गया है, जिसमें प्रत्येक स्वर के लिए एकतंत्री स्वीकारी गयी है, जिस पर आसानी से तीनों सप्तकों का वादन किया जा सकता है।

पं० लालमणि एवं चेतन देसाई के अनुसार रामायण वर्णित मत्तकोकिला का वर्णन मात्र कोयल की व्याख्या रूप है, व स्वीकारा गया है कि मत्तकोकिला का पूर्व में प्रचार–प्रसार में

---

(179) भारतीय संगीत वाद्य/पृ०–49
(180) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर/अनुवादक–चौधरी सुभद्रा/वाद्याध्याय/पृ०–112

नहीं था। नाट्यशास्त्र में भी मत्तकोकिला का स्पष्ट वर्णन प्राप्त नहीं होता, परन्तु आचार्य अभिनव गुप्त द्वारा वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जो इस प्रकार है–

विपंची अपूर्णतन्त्रीका कोणवादनीया वीणात्वेकविंषतितंन्त्रीका।।(181)

साथ ही वर्णित किया है–

तत्र मत्तकोकिला प्रधानभूता।।
एकविशतितन्त्रीकत्वेना न्यूनाधिकं।
त्रिस्थानस्वरसारणाजातिगीतिवीणाशरीरमुच्यते।।(182)

अर्थात– मत्तकाकिला वीणा इक्कीस तारों से युक्त है, जिस कारण इसे मुख्य वीणा स्वीकारा जाता है। जिस पर तीनों सप्तकों में वादन करते हुए, सारणा संभावना है। जाति, गीति आदि की भी प्रस्तुति की जा सकती है।

इयं मत्तकोकिला सर्ववीणानां मुख्या प्रकृतिरित्यर्थ।
तत्र हेतुः त्रिस्थानैः सप्तभिः स्वरैः संपन्नत्वादिति।।
त्रिस्थानैः मन्द्रमध्यताराख्यास्थानत्रयोदभूतैरित्यर्थ।।(183)

अर्थात– पंडित शारंगदेव जी द्वारा मत्तकोकिला वीणा को प्राचीनतम वीणा के रूप स्वीकारा है, जो इक्कीस तन्त्रियों से युक्त है व मंद्र, मध्य तथा तार सप्तक में वादन करने में समर्थ है, जिस कारण इसे मुख्य वीणा माना है।

तन्त्रीणामेकविशत्यास्थानत्रयविभूषितः।।(184)

इस प्रकार महाराणा कुंभा द्वारा मत्तकोकिला के विषय में कहा गया है, कि मत्तकोकिला तीनों सप्तक के वादन में समर्थ है तथा इक्कीस तन्त्रियों से विभूषित मानी गई है। श्रीकंठ द्वारा रस कौमुदी के अंतर्गत महाराणा कुम्भा के ही वर्णन को अपने ग्रंथ में स्थान दिया है।

एकतन्त्री द्वितन्त्री च त्रितन्त्री सप्तन्त्रिका।
एकविशांतितन्त्री चेत्युत्तमा मध्यमापराः।।(185)

---

(181) अभिनव भारतीय / अभिनव गुप्त / पृ०–3
(182) अभिनव भारतीय / अभिनव गुप्त / पृ०–3
(183) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर / टीका कल्लीनाथ / वाद्याध्याय / पृ०–112
(184) संगीतराज / महाराणा कुम्भा / भरतकोश / पृ०–945

संगीतोपनिषत्सारोद्धार के इस प्रस्तुत श्लोक में पं० सुधाकलश जी द्वारा कहा गया है, कि एकतंत्री, द्वितन्त्री, त्रितंत्री, तथा सप्ततंत्री आदि वीणाओं में इक्कीस तंत्रियों वाली वीणा उत्तम माननी चाहिए। अभिनव गुप्त द्वारा मत्तकोकिला एक सम्पूर्ण वीणा थी, जिस कारण इस वीणा के वादन होने के विषय में विद्वानों द्वारा स्वीकार आ गया है। सम्पूर्ण कहे जाने से अभिप्राय यह है, कि इस पर तीन सप्तकों का वादन और प्रत्येक स्वर की एक अलग–अलग तंत्री की उपस्थिति होना व कोण के माध्यम से वादन करना। भरतभाष्य में नान्यदेव जी द्वारा मत्तकोकिला का कोई अलग वर्णन प्रस्तुत नहीं किया गया है, किन्तु नारद जी द्वारा प्रयोग की जाने वाली महती वीणा का वर्णन प्राप्त होता है, जिसे इक्कीस तन्त्रियों से युक्त होने की बात कही है। इस महती वीणा को महावीणा भी कहा गया है। महावीणा कहे जाने का कारण यह समझा जा सकता है, कि यह वीणा सभी में प्रमुख हो, जिस कारण इसे महावीणा कहा गया है। अन्य ग्रन्थकारों पं० सुधाकर व विद्याविलास जी द्वारा भी महती वीणा को नारद जी की वीणा के रूप में स्वीकारा है।

एकविशांतितन्त्रीभिमहती नारदीत च।
एकविशतितन्त्रीभिः महावीणा पृकीर्तिताः।।[186]

आचार्य बृहस्पति के मतानुसार नाट्यशास्त्र के अंतर्गत मत्तकोकिला पर आरम्भ की सात तन्त्रियों पर मन्द्र सप्तक, द्वितीय सात तन्त्रियों पर मध्य सप्तक तथा अन्तिम सात तन्त्रियों पर तार सप्तक का वादन किया जाता था। यह सभी स्थाई स्वर कहे गए है, मध्य में उत्पन्न होने वाले स्वरों को मध्यम स्वर कहा गया है, परन्तु इसे सप्तक के मध्यम स्वर के रूप में नहीं समझना चाहिए।[187]

प्रो० रामकृष्ण कवि जो कि वर्तमान युग के विद्वान माने जाते है, के अनुसार मत्तकोकिला वीणा भरतमुनि की वीणा थी।

भरतो...........मत्तकोकिलाम्.........................अवादयदितिप्राहुः।।[188]

---

(185) संगीतोपनिषत्सारोद्वार / पं०सुधाकलश / अध्याय–42 / श्लोक–11
(186) भरतकोश / भरतभाष्य–नान्यदेव / पृ०–628
(187) संगीत चिन्तामणि / आचार्य बृहरूपति / पृ०–91
(188) भरतकोश / प्रो० रामकृष्ण कवि / पृ०–519

ठाकुर जयदेव सिंह के भारतीय संगीत के इतिहास में वर्णित है, कि जो इक्कीस तन्त्रियों से युक्त है व जो तीनों सप्तकों को स्पष्ट रूप से दर्शाति है, इस वीणा को पं० शारंगदेव जी द्वारा मत्तकोकिला वीणा के नाम से सम्बोधित किया गया है। इस तथ्य को कुछ इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि महती वीणा ही आगे चलकर मत्तकोकिला कही गयी, अर्थात् मत्तकोकिला महती वीणा का ही अन्य नाम है, जो इक्कीस तन्त्रियों से परिपूर्ण है व तीनों सप्तकों से भी युक्त व वायु द्वारा झन्कृत होने वाली वीणा है।[(189)]

संगीत राज में महाराणा कुम्भा द्वारा वर्णन प्रस्तुत किया गया है कि–

मत्तकोकिलैव लोके स्वरमण्ड़लमित्युत्च्यते।।[(190)]

इस श्लोक द्वारा यह वर्णन प्राप्त होता है, कि कल्लिनाथ द्वारा भी मत्तकोकिला को स्वरमंडल स्वीकारा गया है।

तदगड् सर्ववीणांना मुख्येंय मत्तकोकिला।।[(191)]

अर्थात्– संगीतराज में महाराणा कुम्भा द्वारा अंग अर्थात् समस्त वीणाओं में प्रमुख वीणा में से मत्तकोकिला वीणा को मुख्य वीणा स्वीकारी है।

प्रकाश महाड़िक द्वारा यह वर्णन प्रस्तुत किया गया है, कि सामगान में बाण वीणा का प्रयोग किया जाता था, परन्तु इस बाण वीणा का प्रयोग लोकरंजन की पूर्ति हेतु नहीं किया जाता था, व गंधर्व को प्रयोग भी देव स्तुति हेतु ही हुआ व लोक रंजन की आवश्यकता के अनुरूप ही बाण वीणा आधारित मत्तकोकिला की उत्पत्ति हुयी, जिस पर नियुक्त इक्कीस तन्त्रियों द्वारा तीनों सप्तकों का वादन हुआ व इन तन्त्रियों की सुरीली मिठास मदमस्त व उन्माद से पूर्ण होने के कारण ही मत्तकोकिला वीणा का नाम पड़ा होगा।

डॉ० शरदचन्द परांजपे द्वारा अपनी पुस्तक भारतीय संगीत का इतिहास में वर्णित किया गया है, कि भरत मुनि द्वारा मत्तकोकिला वीणा के विषय में किसी भी प्रकार का वर्णन प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त किसी भी इक्कीस तन्त्रियों वाली वीणा के विषय

---

(189) सिंह ठाकुर जयदेव/भारतीय संगीत का इतिहास/पृ0140–198
(190) संगीत रत्नाकर (अड़्यार)/पं० सुभ्यमणयम शास्त्री/कल्लीनाथ/श्लोक–112
(191) संगीत राज/महाराणा कुम्भा/पृ०–456

में भी वर्णन नहीं किया गया है, परन्तु अभिनव गुप्त द्वारा शिवागम के माध्यम से यह प्रमाण प्रस्तुत किया गया है, कि समस्त वीणाओं के नामोंल्लेख में मत्तकोकिला का नाम भी प्राप्त होता है। प्रकाश महाडिक जी द्वारा यह भी वर्णित किया गया है, कि संभवतः मत्तकोकिला तन्त्र साहित्य में प्राप्त वीणा रही हो और वैदिक साहित्य भी तन्त्र साहित्य की तरह परम्परा भी अत्यन्त प्राचीन है और भरतमुनि को नाट्यशास्त्र की शिक्षा स्वंय ब्रह्माजी द्वारा प्राप्त हुयी, जो ब्रह्म परम्परा कही गयी, संभवतः इस कारण ही नाट्यशास्त्र में मत्तकोकिला का वर्णन प्राप्त न हुआ हो। अभिनव गुप्त जी इस तन्त्र साहित्य अर्थात् आगम परम्परा की विशेष दिक्षा प्राप्त की है। जिस प्रकार नौवें रस अर्थात् शांत रस के विषय में आ० अभिनव गुप्त जी द्वारा वर्णित किया गया है। उसी प्रकार मत्तकोकिला वीणा को भी प्रमुख वीणा के रूप में अभिनव गुप्त जी द्वारा स्वीकारा गया है।

तत्र मत्तकोकिला प्रधानभूता।।[192]

इसके अतिरिक्त विद्वानों द्वारा मत्तकोकिला को वर्तमान, स्वरमंडल के समान माना गया है। संगीत सार में इस प्रकार से वर्णन प्राप्त होता है–

अथ स्वरमंडल मत्तकोकिला के मत सों लछन लिख्यते।
जहाँ स्वरमंडल को सात तार।।

सूंधें वीणा सह स्वरमंडल में लगाइए।
तब यांको मत्तकोकिला वीणा जानिए।।

ऊन तारन के बांयी और को जीवारी राखिए।
और घोडव के बाहिरि औडव तारन में।।

गमक को स्थान जानिए।
और स्वर के कम्प की क्रिया दाहिने हात की आंगुरी सो तारन में कीजिए।।[193]

अर्थात्– वर्तमान में स्वरमंडल गायन के साथ प्रयुक्त होने वाला वह वाद्य है, जो गायकों द्वारा विशिष्ट स्वर को प्रस्तुत करने हेतु प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार यह अवश्य समझा जा सकता है, कि नारद मुनि भी गेय विधा में परिपूर्ण थे, जिस कारण यह भी सभंव

(192) भरतमुनि–नाट्यशास्त्र/अभिनवगुप्त टीका अभिनव भारती/अध्याय–29/श्लोक–112/पृ०–123
(193) संगीत सार/भाग –2/पृ०–7–8

है, कि महती वीणा के युग परिवर्तन के साथ नाम, स्वरूप आदि में परिवर्तन हुआ और वह मध्यकाल मत्तकोकिला के नाम से जानी गयी और वर्तमान में यह वीणा ही स्वरमंडल के रूपी में प्रचलित है।

5.2.6.1 स्वरमंडल

स्वरमंडल एक अत्यन्त प्राचीन वाद्य है, जो प्रत्येक काल में अपनी उपस्थिति दर्ज करता रहा है। विद्वानों द्वारा स्वरमंडल को प्राचीन काल में नरदमुनि की महती वीणा के रूप में स्वीकारा गया है व मध्यकाल में यह मत्तकोकिला वीणा के नाम से प्रचलित हुयी। इस बात का प्रमाण मध्यकाल में रचित लगभग सभी ग्रन्थों में उनके ग्रन्थकारों द्वारा स्वीकारा गया है। सर्वप्रथम कल्लिनाथ जी द्वारा वर्णन किया गया है कि–

मत्तकोकिलैव लोके स्वरंड़लमित्युच्यते।[194]

इस प्रकार कल्लीनाथ जी द्वारा मत्तकोकिला वीणा को स्वरमंड़ल के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसके पश्चात् के सभी ग्रन्थकारों द्वारा स्वरमंड़ल के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किए है। वीणा प्रपाठ के लेखक परमेश्वर, वाद्य प्रकाश के लेखक विद्याविलासी, संगीत पारिजात के रचयिता पं० अहोबल व राधागोविन्द संगीत सार के रचयिता पं० गजपति नारायण देव जी द्वारा भी स्वरमंड़ल व मत्तकोकिला की समानता व अधुनिक रूप जैसे विचारों को संग्रहित किया है।

इस प्रकार संस्कृत ग्रन्थकारों से साथ–साथ अष्टछाप कवियों द्वारा भी स्वरमंड़ल के विषय में विचार प्रस्तुत करते हुए लिखा है–

सूरदास

सूर–सूरदास जलतरंग मिलकरत मोहनी मन्त्र।

नन्ददास

सुरमंड़ल डफ बीन झीना बाजत रस के एना।

(194) संगीत रत्नाकर(अड़्यार)टीका / कल्लीनाथ / पृ०–248

प्राप्त वर्णन के अनुसार अकबर के नौ रत्नों में शामिल अबुल फज़ल द्वारा स्वरमंड़ल के विषय में कहा है, कि स्वरमंड़ल आकार–प्रकार व लक्षण के ही समान है। स्वरमंड़ल इक्कीस तन्त्रियों से युक्त है। स्वरमंड़ल में प्रयोग होने वाली तन्त्रियाँ लोहे, तांबें तथा तांत की होती है।[(195)] इसी प्रकार पं० अहोबल द्वारा वर्णित किया गया है, कि स्वरमंडल मुक्त तन्त्री की वीणा है व स्वरमंड़ल में प्रत्येक स्वर की अलग तन्त्री का वर्णन प्राप्त होता है। मन्द्र सप्तक से मध्य सप्तक व मध्य सप्तक से तार सप्तक की तन्त्रियों की लम्बाई घटते क्रम में होने का भी वर्णन प्राप्त होता है। साथ ही लम्बाई से साथ–साथ मोटाई होने का वर्णन प्राप्त होता है। पं० अहोबल द्वारा स्वरमंड़ल को पंचकोण आकृति का वाद्य कहा गया है[196)]।

आइन–ए–अकबरी में अबुल फज़ल द्वारा बीर मंड़ल खाँ का वर्णन किया गया है, जो अकबर के दरबार में सुरमंड़ल का वादन करते थे। रागदर्पण जो कि फकीरूल्ला द्वारा रचित ग्रन्थ है, जो 1671 में लिखा गया, प्रस्तुत ग्रन्थ में फकीरूल्ला द्वारा वर्णन किया गया है कि एक बाजा है, जो सुरमंड़ल कहा जाता है, जो ईरानियों के एक वाद्य कानून वाद्य के समान है, इस वाद्य में 25 तार है, यह तन्त्रियां लोहे व तांत की है। कानून वाद्य में चालिस तार होते थे। साथ ही यह भी कहा है, कि वाद्य सुरति (श्रुति) के प्रयोग हेतु उपयोग में लिया जाता है[(197)] फकीररूल्ला के समान ही मआदनुल मौसीकी में मो० करम इमाम ने स्वरमंड़ल को वर्णित किया है। सभी के आधार पर ज्ञात होता है, कि मत्तकोकिला जो भरतकालीन वीणा के रूप में जानी जाती है, का स्थान मध्यकाल में स्वरमंड़ल द्वारा अधिग्रहित किया गया, जिसमें इक्कीस तन्त्रियों के होने का वर्णन अकबर के काल में प्राप्त होता है, बाद में पच्चीस तन्त्रियों का प्रयोग आरम्भ हो गया व तांत की तन्त्रियों का वर्णन भी प्राप्त होता है, जो कि अबुल फज़ल तथा फकीरूल्ला द्वारा स्वीकारा गया है। पं० अहोबल, कल्लीनाथ तथा सवाई प्रताप सिंहदेव द्वारा स्वरमंड़ल में तांत की तन्त्रियों का वर्णन नहीं किया गया है। इस प्रकार ज्ञात होता है, कि तांत व धातु का प्रयोग दोनों प्रकार की तन्त्रियों का प्रयोग मध्यकालीन वादक अपनी सुविधानुसार करते थे। आधुनिक युग में

---

(195) आइन–ए–अकबरी –अबुल फज़ल / भाग–3 / पृ०–261
(196) संगीत पारिजात / पं० अहोबल / वाद्याध्याय / श्लोक–52–58
(197) मानसिंह तोमर–मानकौतुहल / संपादक–द्विवेदी श्री हरिहरनिवास / पृ०–102

स्वरमंड़ल में धातु की तन्त्रियों का ही प्रयोग किया जाता है, जो कि स्वर की तारता के अनुसार ही मोटे व पतले क्रम में प्रयोग होती है।

स्वरमंडल

स्वरमंड़ल की आकृति के विषय में कहा गया है, कि यह आरम्भिक स्वरूप में लम्बाई में तीन फीट का था और चौड़ाई में लगभग ड़ेढ. फीट का था तथा इसकी ऊँचाई सात इंच होती थी। बाद में वादकों द्वारा वादन की सुविधानुसार इसकी बनावट में परिवर्तन किया गया और वादकों व गायकों द्वारा गोद में रखकर वादन की सुविधा के अनुसार आकार भी कुछ छोटा हो गया। आधुनिक काल में स्वरमंड़ल के कई आकार देखने को मिलते है। जिसमें इक्कीस से लेकर तीस तन्त्रियों तक की सुविधा होती है। वादन विधी के दो प्रकार एच० ए० पोपले द्वारा बताए गए है।[(198)] पहली विधी के अर्न्तगत स्वरमंड़ल को दो मिज़राबों की सहायता से बजाए जाने की बात कही गयी है, जिसमें दाएं हाथ की तर्जनी अंगुली व मध्यमा अंगुली में मिज़राब को धारण किया जाता है और मिजराब की सहायता से आघात किया जाता है व बाएं हाथ में शंख जैसी गोल आकार की वस्तु द्वारा तार को दबाते हुए वादन किया जाता है। इस प्रकार स्वरमंड़ल पर मीड़ गमक आदि को प्रस्तुत किया जाना सम्भव होता है। दूसरी विधी के अर्न्तगत स्वरमंड़ल का वादन सन्तूर के समान

(198) Music of India/H.A.Pople/p.116

किया जाता है अर्थात् दोनों हाथों में एक–एक छोटी लकड़ीनुमा वस्तु को धारण कर उसकी सहायता से वादन किया जाता है।

इस प्रकार स्वरमंड़ल के विषय में प्राप्त सभी तथ्यों के आधार पर ज्ञात होता है, कि मुगलकाल के बीर मंड़ल स्वरमंड़ल के वादक थे, साथ ही एच० ए० पोपले की वादन विधियां भी यह स्पष्ट करती है, कि स्वरमंड़ल स्वतन्त्र तथा एकाकी वादन के रूप में भी प्रयोग होता है। इस प्रकार ज्ञात होता है, कि संतूर, कानून जैसे वाद्यों का प्रचार–प्रसार बढ़ता गया और उसी के साथ स्वरमंड़ल का प्रयोग स्वर वाद्यों के रूप में प्रसारित होता गया तथा वर्तमान में अधिकतर गायकों द्वारा स्वरमंड़ल का प्रयोग किया जाता है। मत्तकोकिला जैसे प्राचीन वाद्य वर्तमान में भी प्रयोग की जाने वाली वीणा है, जो वीणा वर्तमान में स्वरमंड़ल के नाम से प्रचलित है। वर्तमान में डी० आर० पार्वतीकार तथा राजेन्द्र कुमार नामक कलाकारों के नाम ही स्वरमंड़ल के स्वतन्त्र वादकों के रूप में प्राप्त होते है। आधुनिक युग के गायकों द्वारा स्वरमंड़ल के प्रयोग का प्रचलन बढ़ रहा है और स्वरमंड़ल द्वारा रागों के स्वरों का उपयोग राग की रंजकता में वृद्धि हेतु किया जाता है। गायकों द्वारा इसे गोद में रखकर व छाती से सटाकर इसका वादन गायन की प्रस्तुती के समय किया जाता है। यह भी वर्णन प्राप्त होता है, कि उ० बड़े गुलाम अली जी द्वारा इसका प्रचलन आरम्भ हुआ व इसके साथ ही उ० आमीर खाँ द्वारा भी इसे प्रयोग में लाया गया। स्वरमंड़ल एक अत्यन्त सुरीला व रंजकता से परिपूर्ण वाद्य है। इसकी तन्त्रियों को अंगुलियों की सहायता से छेड़ते हुए, संगीत के वातावरण को मधुरता प्रदान की जाती है। इस प्रकार स्वरमंड़ल संगीत के विशाल इतिहास का अभिन्न अंग रहा है, जो आरम्भ में महती वीणा के रूप में प्राप्त हुआ फिर मत्तकोकिला के रूप में स्वरों को अलंकृत करता रहा और वर्तमान में स्वरमंड़ल के रूप में संगीत को रंजकता से परिपूर्ण कर रहा है।

5.2.7 आलापिनी

आलापनी वीणा का वर्णन कई ग्रन्थकारों व विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी शब्दकोश के अनुसार आलापनी का अर्थ है–बंसुरी या बंसी[199] परन्तु हरिपाल, गजपति नारायणदेव, पार्श्वदेव तथा सोमेश्वर द्वारा आलापनी वीणा को आलावणी कह कर व्याख्यित

(199) राजपाल हिन्दी–शब्दकोश / डॉ० हरदेव बाहरी / पृ०–91

किया गया है। इसी स्थान पर पं० सोमराज देव, महाराणा कुम्भा तथा पं० शारंगदेव जी द्वारा आलापनी वीणा के नाम से ही सम्बोधित किया गया है। साथ ही अधिकतर ग्रन्थकारों द्वारा आलापनी वीणा का विस्तृत परिचय प्रस्तुत नहीं किया गया है। प्रथम सम्पूर्ण वर्णन पं० शारंगदेव जी के ग्रन्थ संगीतरत्नाकर में प्राप्त होता है, उसके पश्चात् राणा कुम्भा द्वारा संगीत राज में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

अन्य सभी ग्रन्थकारों द्वारा संक्षिप्त वर्णन ही प्रस्तुत किया गया है। वादन विधि के विषय में मात्र पर्श्वदेव जी द्वारा ही वर्णन किया गया है। श्रृंगारहार नामक ग्रन्थ, जो हम्मीर द्वारा रचित है, में संगीत रन्ताकर वर्णित श्लोकों को ही स्थान दिया है।[(200)] इसी प्रकार पं० शुभांकर और पं० गजपति नारायण देव जी द्वारा आलापनी वीणा का वर्णन एक समान ही प्रस्तुत किया गया है। साथ ही शब्दकल्पद्रुम में भी आलापनी वीणा का वर्णन समान ही किया गया है। संगीत रत्नाकर में वर्णित वीणा का सार राधागोविन्द संगीतसार से प्राप्त होता है।[(201)] वीणा प्रपाठक के अर्न्तगत आलापनी वीणा को ''आघाटी'' वीणा कहा है, जो एक अत्यन्त प्राचीन वीणा है।

आघाटीसंज्ञया लोके आलापिन्येव कीर्त्यते॥[(202)]

प्राचीन आघाटी वीणा को मैकडोनल तथा कीथ के द्वारा संगत वाद्य स्वीकारा गया है, जो नृत्य के प्रयोग होता है।[(203)] इसी प्रकार वाद्य प्रकाश में आलापनी के विषय में कहा गया है–

आलापिनी त्रितन्त्री च द्वौ परस्पर–एकतौ।
द्वौ तुम्बौ त्रितन्त्र्यः च सप्तस्वराः प्रस्फुटा।।[(204)]

अर्थात्– आलापनि तथा त्रितन्त्री के संयोग द्वारा सातों स्वरों की उत्पत्ति होती है व इसमें तुम्बे दो कहे है, व तंत्रियों की संख्या तीन वर्णित है।

---

200 माहाड़िक प्रकाश/भारतीय संगीत के तन्त्रीवाद्य/पृ०–44
201 माहाड़िक प्रकाश/भारतीय संगीत के तन्त्रीवाद्य/पृ०–44
202 पं० परमेश्वर/वीणा प्रपाठक/वाद्याध्याय/श्लोक–378
203 माहाड़िक प्रकाश/भारतीय संगीत के तन्त्रीवाद्य/पृ०–44
204 विद्याविलासी/वाद्य प्रकाश/तत्वाद्यनि(अध्याय)पाण्डुलिपि

संगीत रत्नाकर वर्णित आलापनि वीणा

नवमुष्टिमितो दैर्ध्य वैणवः सुषिरान्तरः ॥241॥

अगुलद्वन्द्वपरिधिः प्राग्वद् ग्रन्थ्यादिवर्जितः॥

श्लक्ष्णः समः सुवृत्तश्च दण्डः स्यात् ककुभं दधत् ॥242॥

अङ्गुलद्वयविस्तारमगुलार्धायतं तथा॥

तदर्धं पिण्डसंयुक्तमुन्मुखं पत्रिकोज्झितम् ॥243॥

एकदण्डमधोभागे शकुना तु विराजितम्॥

चतुरङ्गुलदैर्येण बहिर्मध्योन्नतेन च ॥244॥

अर्थात्– आलापनी वीणा का ड़ाड़, बांसुरी के समान बांस द्वारा निर्मित होता है। जिसकी लम्बाई नौ मुट्ठी कही है व यह दण्ड़ अन्दर से पोला अर्थात् खोखला होता है। जिसकी परिधी दो अंगुल कही है। यह संरचना उसी प्रकार है, जिस प्रकार से एकतन्त्री की होती है, अर्थात् दण्ड़ की लकड़ी कहीं से भी कटी–फ़टी न हो व उत्तम श्रेणी की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार दण्ड़ गोलाई वाला होता है, जिसका मुख मोटा व ऊपर की ओर मुख होता है, जिसमें किसी भी प्रकार की पत्रिका नहीं होती है

तस्य तुम्बं परीणाहे द्वादशाङ्गुलसंमितम्॥
चतुरङ्गुलवक्त्रं च दन्तनाभिसमन्वितम् ॥245॥

अर्थात्– तुम्बे के लक्षण वर्णित करते हुए कहा है, कि बारह अंगुल की परिधी का तुम्बा होता है। जिसका मुख चार अंगुल का कहा है, जिसकी नाभि में हाथी के दांत का प्रयोग किया जाता है तथा ऊपरी सिरे से लगभग दो मुट्ठी का स्थान छोड़कर बांधा जाता है।

अग्रादधस्तात् पादोने मुष्टियुग्मे निबध्यते॥
अत्र मेषान्त्रतन्त्री स्यात् सूक्ष्मा श्लक्ष्णा समा दृढा ॥246॥

अर्थात्– तन्त्रियों के संदर्भ में पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किया गया है कि आलापनी वीणा में पतली चिकनी व एक–समान मोटी बकरे के आत से निर्मित तन्त्रियों को बांधा जाता है।

कर्परं नारिकेलोत्थं दोरकः सारिकास्तथा॥
त्रीण्येतानि न विद्यन्ते यत्र सालापिनी मता॥247॥

अर्थात्– खप्पर, डोरी व सारिका अर्थात् पर्दों से विहीन हो, उसे आलापनी समझना चाहिए।

इसके आधार पर सुभद्रा चौधरी द्वारा वर्णन किया गया है कि उड़ीसा के एक लोक वाद्य की रूप–रेखा आलापनी के समान है, जिसे ''तुइला'' कहा गया है।

दशमुष्टिमितं दण्डमत्राहुः खादिरं परे॥
पट्टसूत्रमयीं तन्त्री यद्वा कार्पाससूत्रजाम्॥248॥
रक्तचन्दनजान् सर्वान् वीणादण्डान् परे जगुः॥
दशमुष्ट्यधिकं मानं क्वचिल्लक्ष्येषु दृश्यते॥249॥

अर्थात्– कुछ विद्वानों द्वारा इसे दस मुट्ठी व खैर की लकड़ी का प्रयोग दण्ड़ के लिए वर्णित किया गया है व तन्त्री हेतु, रेशम या कपास से निर्मित सूत का वर्णन किया गया है व कुछ के द्वारा लाल चन्दन के दण्ड के प्रयोग की भी बात कही है।

तुम्बं वक्षसि निक्षिप्य वामाङ्गुष्ठेन तस्य च॥
मूलमुत्पीड्य धृत्वा तामथ मध्यमया सुधीः॥250॥

दक्षिणस्यानामया वा वादयेद् बिन्दुधातुवत्॥

बिन्दुहस्तेन वा मन्द्रे मध्ये तारे च वादयेत्॥251॥

त्रयस्तु दक्षिणात् पाणेश्चत्वारो वामतः स्वराः॥

इत्युक्तं कैश्चिदाचार्यैः,

अपरे त्वन्यथा जगुः॥252॥

मध्यमो मुक्तया तन्त्र्या तर्जन्याद्यङ्गुलीत्रयात्॥

वामस्यानामिकावर्ज्यात् त्रयः स्युः पञ्चमादयः॥253॥

मुक्ततन्त्र्याथ षड्जः स्यादृषभस्तर्जनीभवः।
गान्धारो मध्यमाङ्गुल्या दक्षिणेन,

अथ वादनम्॥

आरोहेणावरोहेण सप्तकद्वितये भवेत्॥

एभिः स्वरैर्विरचितं विचित्रं रागमालपेत् ॥255 ॥

गायेद् गीतं निबद्धं च प्रवीणो वीणयानया॥
इदमालापिनीलक्ष्म श्रीनिःशकेन कीर्तितम् ॥256 ॥

अर्थात्– वादन विधि के विषय में वर्णन प्राप्त होता है, कि आलापनी वीणा का तुम्बा छाती से सटा कर बाएं हाथ के अंगुठे के द्वारा मुख्य अर्थात् मूल को दबाते हुए, धारण करें व दाएं हाथ की मध्यमा या आनामिका के द्वारा तीनों सप्तकों का वादन करें। जिसमें से तीन स्वरों की उत्पत्ति दाएं हाथ द्वारा व शेष चार अन्य स्वरों को बाएं हाथ की सहायता से बजाना व वादन करना चाहिए। कुछ विद्वानों द्वारा कहा गया है, कि मध्यम स्वर को खुली तन्त्री द्वारा बाएं हाथ की अनामिका से व तर्जनी की सहायता से पंचम व अन्य स्वरों का वादन करें, षड़ज को खुला बजाए व ऋषभ, गन्धार व मध्यम को दाएं हाथ की तर्जनी से बजाए।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है, कि एक खुले तार पर दो स्वरों की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। इस तथ्य द्वारा यह स्पष्ट होता है, कि आलापनी वीणा में दो तन्त्रियों का प्रयोग होता था। आलापनी वीणा दोनों सप्तकों का वादन सम्भव था। आलापनी वीणा पर विभिन्न रागों का वादन सम्भव था व निबद्ध तथा अनिबद्ध के साथ वादन किया जाता था। इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा आलापनी वीणा का विस्तृत वर्णन प्रस्तूत किया गया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा यह भी कहा गया है, कि आलापनी वीणा आकार में कड़ाही जैसी आकृति से समानता रखती है, अर्थात् तुम्बे को आधा कडाही के समान काटा गया है।[205]

पं० शारंगदेव जी के अतिरिक्त मात्र गजपति नारयणदेव द्वारा इसके तुम्बे का आकार परिधि में करभ जैसा है अर्थात् ऊपरी भाग से नीचे की ओर बढ़ते हुए मोटाई में बृद्धि होती है व दन्त वाले तुम्बे को बांधने के विषय में सोमराजदेव जी द्वारा कहा गया है –

बध्नीया तुम्बक दन्त चारू तुम्बियान्वितम्।[206]

पं० सोमराज देव जी द्वारा कहा गया है कि आलापनी वीणा तीन तन्त्रियों से युक्त वीणा है, जिस पर म, प, ध, नी स्वरों की उत्पत्ति सम्भव है।

(205) माहाड़िक प्रकाश/भारतीय संगीत के तन्त्रीवाद्य/पृ०–45
(206) संगीत रत्नावली/सोमराजदेव/भरत कोश/पृ०–800–801

तेषां त्रिसूत्रिका तन्त्री तस्या मपधनी स्वराः।
आमीषामेव भेदेन वाधन्ते सारिग आपि।।[207]

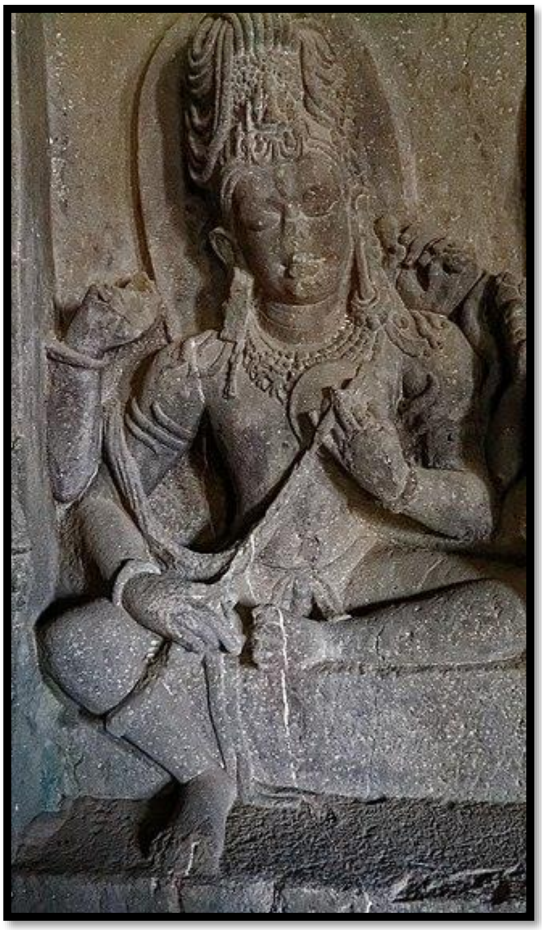

7वीं–8वीं शताब्दी, एलोरा की गुफा–21,भगवान शिव आलापनी वीणा का वादन करते हुए[208]

डॉ० इन्द्राणी चक्रवर्ती द्वारा वर्णन किया गया है, जिसमें मुख्य रूप से तीन पर्दों को बाँधे जाने की बात कही गयी है, परन्तु इस तथ्य के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि आलापनी वीणा में मात्र तीन ही पर्दे होते है, किन्तु इस तथ्य को इस प्रकार अवश्य समझा जा सकता है कि आलापनी वीणा के आरम्भिक स्वरूप में तीन पर्दें होगें व पर्दों की संख्या बाद में समय के साथ–साथ बढ़ती गयी।[209] इससे पूर्व के अन्य ग्रन्थकारों द्वारा पार्श्वदेव, सोमराजदेव, हरिपाल इत्यादी के द्वारा पर्दों के विषय में कोई भी जानकरी प्रस्तुत नहीं की गयी है, मात्र स्वरों को अंगुली के माध्यम से उत्पन्न करने की बात का उल्लेख किया है।

(207) संगीत रत्नावली / सोमराजदेव / भरत कोश / पृ०–801
(208) मिश्र लालमणि / भारतीय संगीत वाद्य / चित्र सं०–13
(209) स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान / डॉ० इन्द्राणी चक्रवर्ती / पृ०–272

इसी प्रकार पं० वासुदेव शास्त्री द्वारा भी कहा गया है, कि आलापनी वीणा को बजाते समय उसके तुम्बे को वक्षस्थल पर सटाकर ड़ाड़ के नीचे के हिस्से को बाएं हाथ की मध्यमा व अंगूठे पर धारण कर चारों अंगुलियों की सहायता से चारों स्वर व अन्य तीन स्वरों की उत्पत्ति दाएं हाथ की अंगुलियों की सहायता से वादन करें व इस प्रक्रिया के अर्न्तगत निबद्ध गीतों का वादन होता है।[(210)]

इस प्रकार आलापनी वीणा के विषय विभिन्न ग्रन्थों में ग्रन्थकारों द्वारा वर्णन किया गया है, व आलापनी वीणा से मिलता–जुलता वाद्य जिसे तुइल कहा गया है। उसका प्राप्त वर्णन सचित्र करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है। वर्तमान में इस वाद्य का कोई अन्य शास्त्रीय रूप शोधार्थी द्वारा नहीं प्राप्त हुआ है, जिस कारण जो स्वरूप प्राप्त हुआ, वह इस प्रकार है–

5.2.7.1 तुइला

उड़ीसा की जनजाति द्वारा बजाए जाने वाला वाद्य ''तुइला''

एक उड़ीसा की भुमिजा जनजाती के द्वारा बजाए जाने वाला वाद्य है। तुम्बा नीचे की ओर से आधा कटा हुआ होता है, व बासं द्वारा निर्मित छड़ी पर कपास की डोरी की तन्त्री बना कर छड़ी के दोनों सिरों से बाँधा जाता है, और तुम्बा जिसे तुमड़ी नाम से सम्बोधित किया जाता है, उसे छाती से सटा कर दाहिने हाथ की सहायता कपास की इन तन्त्रियों को

(210) संगीत शास्त्र / पं० के०वासुदेवशास्त्री / पृ०–256–257

खींचते हुए वादन किया जाता है। इस वाद्य का प्रयोग संगत वाद्य के रूप में अधिकतर किया जाता है। यह सम्पूर्ण वर्णन कहीं न कहीं आलापनी वीणा के वर्तमान स्वरूप को परिल्क्षित करता है और वर्तमान में आलापनी वीणा के होने की बात की पुष्टि करता है।[(211)]

इस प्रकार यह समझा जा सकता है कि आलापनी वीणा वर्तमान में भी प्रयोग में है, परन्तु वह वर्तमान में शास्त्रीय वाद्य न होकर एक लोकवाद्य के रूप में संगीत के क्षेत्र में योगदान प्रादान कर रहा है। संगीत में वर्तमान में भी आलापनी वीणा एक तन्त्री वाद्य के रूप में उडीसा के क्षेत्र में प्राप्त होता है। इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल की झलक वर्तमान में भी परिल्क्षित होती है।

5.2.8 किन्नरी वीणा

किन्नरी वीणा के सम्बन्ध में कई प्रकार के वर्णन प्राप्त होते है। एक मतानुसार किन्नरी वीणा को स्वर्ग के किन्नरों द्वारा एक वाद्य के रूप में विकसित किया गया। कहा जाता है कि किन्नरी वीणा सारिका युक्त वीणा है, जिस कारण यह स्वीकारा जाता है, कि किन्नरी वीणा को उसी प्रकार ही महत्वपूर्ण स्वीकारा जाता है, जैसे सारिका रहित वीणाओं में एकतन्त्री वीणा को। प्रत्येक सारिका युक्त वीणा का आधार किन्नरी वीणा को माना जाता है। भरत मुनि द्वारा किन्नरी वीणा के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में वर्णन प्रस्तुत नहीं किया है, परन्तु अभिनव भारती मे अभिनवगुप्त के किन्नरी वीणा को मुख्य वीणा के रूप में वर्णित किया है। पंडिताराध्यचरित्र तथा बासवा पुराण में भी सोमनाथ जी द्वारा किन्नरी वीणा का वर्णन करते हुए किन्नरा, किन्नरी तथा ट्रपेरी कहा है। नान्यदेव जी द्वारा भी किन्नरी वीणा का वर्णन किया गया है। देशी भाषा में किन्नरी वीणा को हरिपाल द्वारा सारंगवीणा के रूप में बताया है।

(211) पं० शरंगदेव–संगीत रत्नाकर / अनुवादक–चौधरी सुभद्रा / वाद्याध्याय / पृ०–323

किन्नरी

किन्नरी भाषया देशया वीणा सारंग पूर्विका(212)।

इसके अतिरिक्त अहोबल, नारद, हम्मीर, शुभांकर, गजपति नारायणदेव तथा परमेश्वर द्वारा भी अपने ग्रन्थों में किन्नरी वीणा को वर्णित किया है। सोमेश्वर रचित मानसोल्लास के अर्न्तगत किन्नरी वीणा का सबसे पहला वर्णन प्राप्त होता है, परन्तु किन्नरी वीणा का विस्तृत वर्णन संगीतसार तथा संगीत रत्नाकर में किया गया है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के वर्णन किन्नरी वीणा के विषय में प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है–(213)

किन्नरी
- मार्ग किन्नरी
  - लघु
  - बृहती
- देशी किन्नरी
  - लघु
  - मध्यमा
  - बृहती

किंनरी द्विविधा लघ्वी बृहती चेति कीर्तिता॥
तत्र लघ्वीगतं लक्ष्म सांप्रतं प्रतिपाद्यते॥257॥

स्याद्वितस्तित्रयं दैर्घ्य मानं पञ्चाङ्गुलाधिकम्॥
पञ्चाङ्गुलः परीणाहो वेणुदण्डस्य यत्र च॥258॥

गर्भेऽस्य व्यापकं रन्ध्र,
ककुभः शाकदारुजः॥
सार्धद्वयङ्गुलविस्तारो दैर्घ्य पञ्चाङ्गुलश्च सः॥259॥

तस्मादर्धामुलन्यूना दैर्घ्य विस्तारयोर्भवेत्

---

(212) संगीत सुधाकर / हरिपाल / पाण्डुलिपि / क्रं०–3 / पृ०–89
(213) महाड़िक डॉ० प्रकाश / भारतीय संगीत के तन्त्र वाद्य / पृ०–46

मध्ये कूर्मोन्नता लौही पत्रिका ककुभस्थिता ॥260 ॥

गृध्रवक्षोऽस्थिनलिका कनिष्ठागुलिसंमिता ॥
लौही कांस्यमयी यद्वा कीर्तिता सारिकाख्यया ॥261 ॥

श्लिष्टा वस्त्रमषीमिश्रमदनेन चतुर्दश ॥
चतुर्दश स्वरस्थाने दण्डपृष्ठे निवेशयेत् ॥262 ॥

सप्तकस्य द्वितीयस्य यो निषादो भवेदधः ॥
तस्य स्थाने भवेदाद्या सारिकान्योर्ध्वमगुलात् ॥263 ॥

स्थापयेदन्तरे किंचित् किंचित् पूर्वाधिके परा ॥
द्वयङ्गुलावध्यष्टमी तु पूर्वस्यास्त्र्यमुलान्तरे ॥264 ॥

स्थापयित्वा पराः षट् च पूर्वपूर्वाधिकान्तरे ॥
चतुरङ्गुलपर्यन्तं सारिकाः संनिवेशयेत् ॥265 ॥

तुम्बं दण्डस्थककुभस्याधःसन्धौ निवेशयेत् ॥
तृतीयतुर्यसार्योस्तु मध्येऽधस्ताद् द्वितीयकम् ॥266 ॥

पूर्वस्मादपरं तुम्बं विस्तारेऽभ्यधिकं मनाक् ॥
दण्डाग्राद् द्वयङ्गुलेऽधस्ताद्रन्धं कृत्वाथ निक्षिपेत् ॥267 ॥
चलशङ्कुं गले रन्धं दधमानम्,
अतोऽङ्गुलात्।
अधस्तादगुलोत्सेधं मेढकं बाणपुङ्खवत् ॥268 ॥
कृत्वा ततोऽग्रतः किंचित् स्थिरशकुं निवेशयेत् ॥
ततो लोहमयीं श्लक्ष्णां वर्तुलां च समां दृढाम् ॥269 ॥
गजकेशोपमा तन्त्री निबध्य ककुभे दृढम् ॥
सारिकामस्तकन्यस्तामानीतां मेढकोपरि ॥270 ॥
लग्नां द्वितीयप्रान्तेन वेष्टयेच्चलकीलके ॥
शकुं तं भ्रामयेत् तावद् यावत् तन्त्री दृढा भवेत् ॥271 ॥

भ्रामणं वैपरीत्येन तन्त्री शैथिल्यकारणम् ॥
तन्त्रीदैर्येऽथ दााय चलशङ्कोर्गलस्थिते ॥272 ॥

छिद्रे न्यस्याथ संकीलं स्थिरशङ्कौ निवेशयेत् ॥

लघ्वी सा किंनरी प्रोक्ता शार्ङ्गदेवेन सूरिणा ॥273 ॥

अस्यां स्थायिनमारभ्य गणयेत् सप्तकद्वयम् ॥
सारीककुभयोर्मध्ये तर्जन्याद्यगुलित्रयात् ॥274 ॥

वादयेत् किंनरीवीणातन्त्री दक्षिणपाणिना ॥
वामस्य तिसृभिस्ताभिरङ्गुलीभिस्तु तन्त्रिकाम् ॥275 ॥[214]

अर्थात्– किन्नरी वीणा के लघु मार्ग प्रकार का वर्णन, इस प्रकार प्राप्त होता है कि संगीत रत्नाकर वर्णित किन्नरी वीणा का वर्णन कुछ इस प्रकार है कि मार्ग किन्नरी का दण्ड़ लम्बाई में तीन बालिश्त पाँच अंगुल बताया गया है। साथ ही दण्ड़ की मोटायी भी पाँच अंगुल कही है। सारिकाओं के विषय में पं० शारंगदेव जी कहा गया है कि गिद्ध की छाती अर्थात् वक्ष स्थल की छेद वाली हड्डियों की सारिका बनाए, जो कनिष्ठ अंगुली के समान हो अथवा लोहे या कासें द्वारा बनी हो। इन सारिकाओं को दण्ड़ में जोड़ने हेतु कपड़े को जलाकर उसकी राख की स्याही बनाकर उसे मोम के साथ मिलाकर चौदाह सारिकाओं को दण्ड़ पर स्थापित करें, जिससे चौदाह स्वरों की प्राप्त होती है। दण्ड़ में स्थापित ककुभ अर्थात् एक प्रकार के घुड़च के नीचे तुम्बें को स्थापित किया जाता है।

पहला तुम्बें से दूसरी तथा तीसरी सारिका के बीच वाले भाग में दूसरा तम्बा स्थापित किया जाएगा, दूसरा तुम्बा प्रथम तुम्बें से कुछ बड़ा होगा तथा दण्ड़ के अग्र भाग से दो अंगुल पश्चात् छिद्रकर उसमें एक कील को स्थापित करें, जो भ्रमण योग्य हो व कुछ आगे लगभग एक अंगुल की ऊचांई युक्त मेंढ़क की पूंछ जैसा व हाथी की ताकत जैसे तार का ककुभ पर स्थापित कर सारिका के ऊपर तन्त्रि को दूसरे सिरे की खूंटी पर स्थापित करें जिसके माध्यम से दो सप्तकों की प्राप्ती होगी। किन्नरी वीणा का वादन सारिका तथा ककुभ के बीच के भाग में दाएं हाथ की तर्जनी के साथ की तीन अंगुलियों से बजाना चहिए व बाएं हाथ द्वारा तन्त्रियों की सारिकाओं पर दबाते हुए, स्वर प्राप्ती करनी चाहिए। संगीत राज में मार्ग किन्नरी वीणा को संगीत रत्नाकर के समान ही वर्णित किया है, परन्तु कुम्भ द्वारा चौदाह के स्थान पर बाइस सारिकाओं का वर्णन किया गया।[215] साथ ही कुम्भ के

(214) संगीत रत्नाकर/अडयार/वाद्यध्याय–श्लोक– 257–276
(215) कुम्भ/संगीत राज/भरत कोश/पृ०–563–564

वर्णन से ज्ञात होता है कि मार्ग किन्नरी लुप्त हो चुकी थी क्योंकि लघु किन्नरी के वर्णन में यह वर्णन प्राप्त होता है, कि दो वीणाओं को वर्णित मात्र परम्परानुसार किया गया है।[(216)]

तत्तत्सारीप्रदेशस्थां स्वरव्यक्त्यै निपीडयेत्॥
वितस्त्यभ्यधिका दैर्घ्य परिणाहेऽङ्गुलाधिका॥276॥

लव्याः स्याद् बृहती स्नायुमया तन्त्रीस्त्रितुम्बिका॥
आलापिनीवदस्यां च स्थाप्यं तुम्बं तृतीयकम्॥277॥

अन्यल्लघ्वीगतं लक्ष्य बृहतीं किंनरी श्रयेत्॥[(217)]

अर्थात्– इसके पश्चात् बृहती मार्ग किन्नरी वीणा को वर्णित किया गया है। बृहती वीणा लघु वीणा से लगभग एक बालिश्त लम्बी होती है तथा चौड़ाई छः अंगुल अर्थात् एक अंगुल अधिक होती है। बृहती मार्ग किन्नरी में तीन तुम्बे को स्थान दिया गया है व तीसरा तुम्बा आलापनी के समान होता है। इस वीणा की तन्त्रियां तातं की निर्मित होती है। अन्य समस्त लक्षण लघु मार्ग किन्नरी वीणा के समान ही प्राप्त होती है।

मानसोल्लास में बृहती मार्ग किन्नरी वीणा को सामेश्वर द्वारा महती किन्नरी वीणा के नाम से वर्णन प्रस्तुत किया है।[(218)] वादन विधि तथा धारण करने की विधि को वर्णित करते हुए कहा है, कि सारिकाओं तथा ककुभ के बीच के खाली स्थान पर दाएं हाथ की ढ़ीली बंधी मुठ्ठी से दण्ड स्थित तारों को बजाना चहिए तथा बाएं हाथ से तर्जनी व मध्यमा से स्वरों पर रखे गए तारों को दबाते हुए वादन करना चाहिए।

कथ्यते साम्प्रंत रम्मा किन्नरी.....वामाकिन्नर वादने।[(219)]

इस प्रकार बृहती किन्नरी वीणा का वर्णन संगीत रत्नाकर के अर्न्तगत प्राप्त होता है।

किंनरीत्रितयं तत्र देशीसंसिद्धमन्यथा॥278॥
बृहती मध्यमा लघ्वीत्यथाऽऽसां लक्ष्म कथ्यते॥
तिर्यग्यवोदरैः षड्भिर्निस्तुषैः स्यादिहाङ्गुलम्॥279॥[(220)]

---

(216) कुम्भ/संगीत राज/भरत कोश/पृ०–563
(217) संगीत रत्नाकर/अडयार/वाद्यध्याय–श्लोक– 276–277
(218) सोमेश्वर/मानसोल्लास/भरत कोश/पृ०–423
(219) सोमेश्वर/मानसोल्लास/भरतकोश/पृ०–423

अर्थात्– किन्नरी वीणा के देशी किन्नरी वीणा के अर्न्तगत तीन प्रकार संगीत रत्नाकर मे वर्णित किए गये है, जो कि लघु, मध्यमा तथा बृहती कहे गए है। लम्बाई की माप की विधी का वर्णन करते हुए कहा गया है कि छः जौ के दानों का छिलका छील कर उन्हें आडा अर्थात् तिरछा एक समान सीध में रखें इसे ही ऐ अंगुल की माप माना जाएगा।

बृहतीदण्डमानं स्याद् दैर्ध्य पञ्चाशदङ्गुलम्॥
षडङ्गुलोऽत्र परिधिदण्डे दैर्ध्य तु काकुभे॥280॥
षडगुलं शिरस्त्वस्य दैर्घ्यविस्तारयोर्भवेत्॥
चतुरङ्गुलसंमानं द्यगुलं तु तदुच्छ्रये॥281॥
निक्षिपेत् काकुभं दण्डं वीणादण्डोत्तरे तथा॥
दण्डांशः परिशेषोऽत्र तावान् यावति शेषिते॥282॥
वीणादण्डान्तककुभशिरोमध्यान्तरे स्थितः॥
तन्त्रीभागस्तृतीयांशाधिकर्त्यालको भवेत्॥283॥
मध्ये कूर्मोन्नतां लौहीं पत्रिकां शिरसि क्षिपेत॥
परितोऽर्धाङ्मुलन्यूना शिरसोऽसौ प्रकीर्तिता॥284॥
वीणाशीर्षादधस्ताच्च सार्धद्वयफूलतः स्थितम्॥
ऊर्ध्वाधो दैर्घ्यभाग्रन्ध्र विस्तारेऽर्धामुलायतम्॥285॥
तिर्यग्दैर्घ्य तावदन्यगन्धं चोभयतोमुखम्॥
तिर्यग्रन्धे चलं शकुमूर्ध्वरन्ध्रनिविष्टया॥286॥
लौह्या सारिकया युक्तं न्यसेत् प्रान्तान्तरं पुनः॥
सारिकायाः शिरोमूले बध्नीयात् काकुभे सुधीः॥287॥
तन्त्रीरन्धात् पुरः साध्रिव्यङ्गुले मेढको भवेत्॥
स च स्यात् कर्तरीयुक्तो गले रन्ध्रान्वितोऽथवा॥288॥

कर्तयां गलरन्ध्र वा सारिकां तां निवेशयेत्॥
तद्रन्धे दण्डान्तरालं विदध्यात् सयवाङ्गुलम्॥289॥

मेढकात् पुरतः शकुः स्थिरः सार्धाङ्गुलान्तरे॥
तिर्यग्रन्ध्र निवेशोऽस्य चलशकुवदिष्यते॥290॥

चलशङ्कुंभ्रामणादि ज्ञेयं पूर्वोक्तरीतितः॥
गृध्रवक्षोस्थिजा यद्वा तत्पादास्थिसमुद्भवाः॥291॥

---

(220) संगीत रत्नाकर/अडयार/वाद्यध्याय–श्लोक– 278–279

कांस्यमय्योऽथवा लौह्यो नलिकाः सारिका मताः॥
सार्धाङ्गुलास्ताः परिधौ दण्डपृष्ठे निवेशयेत्॥292॥

यन्मेढकशिरोमध्यादुपक्रम्यान्तरं भवेत्॥
सारीमस्तकमध्यानां तदिदानीं निरूप्यते॥293॥

आद्यान्तरं तत्र यवाधिकं पञ्चाङ्गुलं मतम्॥
द्वितीयमन्तरालं तु चतुरङ्गुलमुत्तरम्॥294॥

तस्मात् तृतीयतुर्ये तु यवन्यूने मते सताम्॥
यवाधिकत्र्यङ्गुलं तु ज्ञेयं पञ्चममन्तरम्॥295॥

यवोनत्र्यङ्गुलं षष्ठं सयवद्वयङ्गुलं पुनः॥
अन्तरालं सप्तमं स्यात् सार्धद्वयङ्गुलमष्टमम्॥296॥

नवमं तु यवार्धोनं सार्धाङ्गुलमितं मतम्॥
दशमं द्वयङ्गुलं हीनं यवेनैकादशं ततः॥297॥

द्वादशं तु तृतीयांशन्यूनं तस्मात् त्रयोदशम्॥
सतृतीयांशाङ्गुलं स्यादमुलं तु चतुर्दशम्॥298॥

द्वितीयान्तरतोऽधस्तान्यस्येत् तुम्बमधोमुखम्॥
अन्यत् ककुभमूर्ध्वाधस्तुम्बकं संनिवेशयेत्॥299॥

षट्त्रिंशदङ्गुलं चके परिधिस्त्वाद्यतुम्बके॥
किंचिन्न्यूनं ततस्तुम्बं परिधौ स्यादधस्तनम्॥300॥

ईषदस्पृष्टसरिका सारिकास्ता निवेशयेत्॥
मदनेनेष्टकाचूर्णमिश्रेण श्लेषणं दृढम्॥301॥

सारीणामथवा वस्त्रमषीमिश्रेण संमतम्॥
मुक्ततन्त्रीभवं कृत्वा स्वरमाद्यं चतुर्दशम्॥302॥

स्वराः परे स्युः सारीणां चतुर्दशभिरन्तरैः॥
सप्तकद्वयमेवं स्यादेकतारस्वराधिकम्॥303॥

यथास्वं स्वरदेशांशैः श्रुतिस्तस्या वितन्वते॥
द्वित्रास्ततोऽधिकाः सारीर्निबध्नीयात् परे त्विह॥304॥

लक्षयन्त्यन्तराण्यासां स्वराविर्भावतो बुधाः॥
श्रीशार्ङ्गदेवोपदेशात् तद्बोधः सुलभो नृणाम्॥305॥

केचित् त्रयोदशैवात्र सारीर्निदधते बुधाः॥

बृहती किंनरीत्येषा शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता ॥306 ॥[221]

अर्थात्– संगीत रत्नाकर के अनुसार दण्ड़ पचास अंगुल लम्बा व घेरा छः अंगुल का होता है। गिद्ध की छाती तथा परौ की हड्डियों से सारिकाओं का निमार्ण किया जाता है। इसके अतिरिक्त लोगह अथवा कासें द्वारा भी पर्दों को बनाया जाता है। इन सभी पर्दों को गोलाकार रूप में लगाया जाता है, जो लगभग ड़ेढ़ अंगुल की होती है तथा प्रथम तुम्बे की स्थापना में कुछ अन्तर में दूसरा तुम्बा स्थापित होता है। यह दूसरा तुम्बा ककुभ के माथे के नीचे स्थापित किया जाता है। पर्दों को ईंट तथा कपड़े की रख का लेप बनाकर लगाया जाता है। इस प्रकार पर्दों के पश्चात् एक मुक्त तन्त्रि भी स्थापित की जाती है, जिससे मुक्त तन्त्री से एक स्वर तथा दूसरी तन्त्री के चौदाह पर्दों से चौदाह स्वरों को प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार किन्नरी वीणा का सम्पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार राणा कुम्भ संगीत राज में वर्णित करते है, कि बृहती देशी किन्नरी लघु किन्नरी से बारह अंगुल लम्बी होती है तथा घेरा भी एक अंगुल ज्यादा होता है। तृतीय तुम्बा आलापनी के समान ही स्थापित किया जाता है। जिससे यह किन्नरी वीणा तीन तुम्बों से युक्त हो जाती है। अन्य सभी लक्षण लघु किन्नरी के ही समकक्ष कहे गए है।

किन्नर्यदपरोच्यर्त। एतस्या अधिका......लक्ष्मशेष विजानता[222]

मध्यमायां दण्डदैर्घ्य त्रिचत्वारिंशदङ्गुलम् ॥
परिधिदृश्यते तत्र द्वियवोनषडङ्गुलः ॥307 ॥

सार्धत्र्यालविस्तारं प्राग्दैर्घ्य काकुभं शिरः ॥
क्षिपेत् ककुभदण्डस्य वीणादण्डेऽालत्रयम् ॥308 ॥

तावांश्च परिशेषेऽसौ यावतः परिशेषणे ॥
दण्डान्तशीर्षमध्यान्तः सारिकावयवस्थितिः ॥309 ॥

तृतीयभागरहिताङ्गुलत्रयमितो भवेत् ॥
दण्डान्ते सारिकोत्सेधः स्याद् यवोनाङ्गुलद्वयः ॥310 ॥

सारीणामन्तरं त्विह ॥
प्रथमं प्रथितं प्राज्ञैः सार्धाङ्गुलचतुष्टयम् ॥311 ॥

---

(221) चौधरी सुभद्रा / पं० शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / अध्याय–6 / श्लोक– 280–306
(222) कुम्भ / संगीत राज / भरत कोश / पृ०–423

द्वितीयमन्तरं मेयं सयवैरगुलैस्त्रिभिः ॥
तृतीयं तु तृतीयांशाभ्यधिकैस्त्रिभिरङ्गुलैः ॥312 ॥

चतुर्थं त्र्यंमुलं प्रोक्तं पञ्चमं सारिकान्तरम् ॥
यवाधिकाभ्यां सार्धाभ्यामगुलाभ्यां मितं मतम् ॥313 ॥

षष्ठं यवद्वयन्यूनव्यङ्गुलं सप्तमं पुनः ॥

सयवार्धाङ्गुलद्वन्द्वमष्टमं त्वङ्गुलद्वयम् ॥314 ॥

अगुलं सयवद्वन्द्वं नवमं दशमं पुनः ॥

यवोनमगुलद्वन्द्वमन्तरत्रितयं पुनः ॥315 ॥

इतः परस्याः प्रत्येकं सपादाङ्गुलसंमितम् ॥

विशेषोऽयमिहान्यत्तु लक्ष्म स्याद् बृहतीगतम् ॥316 ॥[223]

अर्थात्—मध्यमा देशी किन्नरी का दण्ड़ पैंतालिस अंगुल लम्बा तथा छः अंगुल में दो जौ की लम्बाई से कम बताया गया है तथा पं० शारंगदेव जी द्वारा तेराह सारिकाएं होने की बात कही गयी है तथा ककुभ के लक्षण सभी किन्नरी वीणा के समान ही कहे है तथा अन्य सभी लक्षण भी बृहती देशी के समान ही कहे है।

लघ्वीदण्डगतं दैर्घ्यं स्यात् पञ्चत्रिंशदङ्गुलम् ॥
परिधिस्तु तृतीयांशाधिकागुलपञ्चकः ॥317 ॥

अगुलत्रयविस्तारं ककुभस्य शिरो भवेत् ॥
पूर्ववत् काकुभो दण्डो वीणादण्डे निधीयते ॥318 ॥

परिशेषस्तथा सा स्याद् यथा दण्डान्ततन्त्रिका ॥
आ ककुभशिरोमध्याद् भवेत् त्र्यंङ्गुलसंमिता ॥319 ॥

दण्डान्ते सरिकोत्सेधः स्यात् सार्धाङ्गुलसंमितः ॥
तदर्धे मेढकोपान्ते,
तत्राद्यं सारिकान्तरम् ॥320 ॥

प्रोक्तं यवेनाभ्यधिकैश्चतुर्भिर्मितमङ्गुलैः ॥
द्वितीयं द्वियवोपेतागुलद्वन्द्वमितं भवेत् ॥321 ॥

यवोनाभ्यामगुलीभ्यां तृतीयं मीयते बुधैः ॥

(223) चौधरी सुभद्रा / पं० शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / अध्याय–6 / श्लोक–307–316

पादोनर्त्यङ्गुलं तुर्यमथ पञ्चममन्तरम् ॥322॥

यवाद्यनाङ्गुलद्वन्द्वं षष्ठं सार्धाष्टभिर्यवैः ॥

सप्तमं तु यवोनेनागुलद्वन्द्वेन मीयते ॥323॥

सार्धाङ्गुलं त्वष्टमं स्यान्नवमं त्वष्टभिर्यवैः ॥

दशमैकादशे प्रोक्ते सपादाङ्गुलके पृथक् ॥324॥

यवन्यूनाङ्गुलमितं द्वादशं च त्रयोदशम् ॥

अन्यत्तु लघुकिंनर्यां लक्ष्म पूर्ववदिष्यते ॥325॥

न बृहत्यधिकं मानं न हीनं त्रिंशदगुलात् ॥
आदर्तव्यं किंनरीणां रक्तिमाधुर्यवर्जनात् ॥326॥

एतयोरन्तराले तु यथेष्टं मानकल्पना ॥
शक्ता विवेक्तुमत्रापि स्वरस्थानानि तद्विदः ॥327॥(224)

अर्थात्– देशी लघु किन्नरी वीणा का दण्ड़ लम्बाई में पैंतिस अंगुल का होता है, जिसका घेरा एक तिहाई अधिक व पांच अंगुल होती है अर्थात् $5\frac{1}{3}$ होती है। ककुभ चौडाई में तीन अंगुल होता है। ककुभ के अन्य लक्षण मार्गी किन्नरी के ही समान होते है। तथा सारिकाओं की संख्या तेरह कही है व लक्षण मार्गी के समान कहे है। रंजकता तथा मधुरता को ध्यान में रखते हुए कहा है, कि किन्नरी वीणा को तीस अंगुल से कम का नहीं होना चाहिए, जो किन्नरी वीणा तीस अंगुल से कम तथा बृहती वीणा अर्थात पचास से अधिक हो उसका आदर के साथ नहीं स्वीकारना चाहिए।

(224) पं० शारंगदेव / संगीत रत्नाकर / वाद्याध्याय / श्लोक–317–327

12वीं शताब्दी चेन्नकेशव स्वामी मन्दिर में किन्नरी वीणा का वादन करती हुयी मूर्ति

इसी प्रकार संगीत साज के अर्न्तगत कुम्भ द्वारा मतंग किन्नरी के रूप में लघु किन्नरी वीणा का वर्णन प्रस्तुत किया है। दण्ड़ पर चौदाह से अट्ठारह पर्दों को लगाया जाता है, जिस पर चार पर्दों को तार सप्तक हेतु लगाया जाता है। मन्द्र सप्तक की दो सारिकाएं कही है, जिससे तीनों स्थानों से शुद्ध रागों की उत्पत्ति सम्भव है। ड़ेढ़ अंगुल पर मंद्र से मध्य सप्तक को रखा जाता है। गिद्ध के पंख या पैरों की हड्डियों से सारिकाएं बनायी जाती है। सबसे ऊपर षडज तथा नीचे की ओर षड़ज पंचम भाव में सुर किया जाता है, जिससे षड़ज ग्राम की प्राप्ती होती है तथा षड़ज मध्यम पर सुर करने पर मध्यम ग्राम की प्राप्ती होती है।

तिस्त्रः किन्नरवीणास्स्यु बृहद्देशी समाश्रिताः।
तास्विष्टरागं निपुणमालपेत्स्वच्छमानसः।।[225]

---

(225) कुम्भ/संगीत राज/भरत कोश/पृ०–454–455

इसके अतिरिक्त अष्टछाप कवियों द्वारा जो वर्णन प्रस्तुत किया गया है, वह इस प्रकार है–

कुम्भनदास

बाजत डफ, मृदंग, बांसुरी, किन्नरी सुर कोमलरी।
झांझ, बीन, पखावज, किन्नरी, डफ, मृदंग बजाइएं।।
मुहवरी, किन्नरी, झांझ बाजत शंख ढप पिनाक[226]

सूरदास

बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुंड़ली यंत्र।[227]

पं० अहोबल जी संगीत पारिजात में तीन तुम्बे व दो तन्त्रियों से युक्त वीणा को किन्नरी वीणा कहा है।[228] इसी प्रकार आइन–ए–अकबरी में अबुल फ़जल द्वारा वर्णित करते हुए किन्नरी वीणा के विषय में कहा है, कि तीन तुम्बे दो तारों से युक्त व सोलह सारिकाओं वीणा किन्नरी है, परन्तु साथ ही किंगर नाम का भी वर्णन किया है। इस वर्णन से मात्र यह ज्ञात होता है, कि किंगर लम्बाई में कुछ छोटी थी, परन्तु तम्बों का स्पष्टिकरण नहीं प्राप्त होता है।[229] एस० एम० टैगोर के अनुसार किन्नरी का तुम्बा नारियल के खप्पर के द्वारा निर्मित किया जाता है।[230] इसी क्रम में प्रो० रामकृष्ण कवि द्वारा किन्नरी वीणा का अविष्कारक मतंग जी को माना गया है, क्योंकि मंतग जी से पहले पर्दों वाली वीणा का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। साथ ही यह भी माना जाता है, कि सारिकायुक्त वीणा का निर्माण होना, भारतीय संगीत के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण देन है। कुम्भ के अनुसार मंतग द्वारा निर्मित किन्नरी वीणा चौदाह से अट्ठारह सारिकाओं से युक्त थी।

अष्टादशोऽथवा दण्डपृष्ठेन्यस्ता यथापथम्।[231]

---

(226) महाडिक डॉ० प्रकाश/भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य/पृ०–49
(227) महाडिक डॉ० प्रकाश/भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य/पृ०–50
(228) पं० अहोबल/संगीत पारिजात/अध्याय–2/श्लाक–62–64
(229) अबुल फजल/आइन–ए–अकबरी/भाग–3/पृ०–268–269
(230) टैगोर एस०ढम०/यन्त्र कोश/पृ०–19–20
(231) कुम्भ/संगीत राज/भरत कोश/पृ०–454

किन्नरी वीणा जो पैंतिस अंगुल की लम्बाई से युक्त हो व तीन तुम्बों वाली हो वह कलकत्ता से संग्राहलय में संरक्षित है। इस प्रकार प्राप्त विभिन्न रूपों वाली तीस अंगुल से पचास अंगुल तक की ही होती है तथा इन सभी तथ्यों के आधार पर किन्नरी वीणा समस्त सारिका युक्त वीणा की ही आधारभूत संरचना है, जो वर्तमान में भी सभी पर्दों से युक्त वीणाओं की जननी है।

5.2.9 पिनाकी वीणा

संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय में पिनाकी वीणा के आकार के लक्षण, वादन करने वाले चाप (कमानी) के लक्षण, तथा उसको धारण करने के लक्षणों का वर्णन प्राप्त हुआ है। पिनाक शब्द का प्रयोग से तात्पर्य ग्रन्थों व पुराणों के अनुसार शिवजी के धनुष से है, जिसके विषय में वर्णन प्राप्त होता है कि पिनाक शब्द का प्रयोग भगवान शिवजी के संदर्भ में वेदों आदि में देखने को मिलता है। यर्जुववेद में भी पिनाक शब्द का प्रयोग इस प्रकार प्राप्त होता है।

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि ॥
अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि ॥[232]

अर्थात्– हे! महादेव रूद्रदेव आप महान है, यह प्रणाम स्वीकार करते हुए, आप युद्ध विद्या में निपूर्ण विद्वान व शत्रुओं के बल को समाप्त कर सबकी रक्षा करने वाले महापुरूष है। हे! रूद्रदेव आपने शत्रुओं को भी रूदान करनें के उद्देश्य हेतु, जिस धनुष की प्रत्यंचा आपने सम्पूर्ण जगत की रक्षा हेतु चढ़ायी है, उस पिनाक धनुष को वस्त्रों के द्वारा ढ़क, आप अपने इस रौद्र रूप को शान्त कर, क्रोध व हिंसा को त्याग कर अहिंसा रूप में सबका कल्याण करें व हवन की आहुतियों को ग्रहण कर अपने निवास मंजुवान पर्वत की ओर प्रस्थान करें व पूजन स्वीकार करें।

इसके अतिरिक्त यजुर्वेद में एक स्थान पर और पिनाक सम्बधित तथ्य प्राप्त होता है कि–

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव॥
परमे वृक्षऽआयुधं निधाय कृत्तिं वसानऽआ चर पिनाकम्बिभ्रदा गहि ॥[233]

---

(232) शुक्ल यजुर्वेद / अध्याय–3 / मन्त्र–61

अर्थात्– हे! पलनहार शुभफलों को प्रदान करने वाले, छोटी से छोटी पूजा से प्रसन्न होने वाले। सदैव धैर्य, शान्ति व गम्भीरता को धारण करनें वाले, पराक्रम से परिपूर्ण, प्रसन्न चित्त के स्वामी, सुख प्रदान करने वाले, कल्याणकारी, जो समस्त शस्त्रों को त्याग कर निःशस्त्र हो गए है व चर्म रूप के वस्त्रों धारण किए हुए है आपकों शत्रुओं का नाश करने वाले पिनाक धनुष को धारण करने की प्रार्थना करते है व आपको रक्षा हेतु आमन्त्रित करते है।

इस प्रकार अन्य स्थानों पर भी पिनाक के विषय में जानकारी प्राप्त होती है, क्योंकि कण्व मुनि के तपस्या में लीन होने के कारण, जो मिट्टी की बांबी दिमकों आदि जीवों द्वारा उनके शरीर पर बना दी गयी, उस पर बांस ने भी अपना आश्रय प्राप्त किया। जब ब्रह्मा जी मुनि की तपस्या से प्रसन्न होकर प्रकट हुए, तब ब्रह्माजी द्वारा कण्व मुनि को उनका स्वरूप स्वस्थ रूप में पुनः दिया गया और इच्छा अनुसार वर भी प्रदान किया गया। तत्पश्चात् कण्व मुनि के मूर्धा (सिर) पर स्वतः उगे हुए बांस को वह अपने साथ ही ले गए और वह भगवान विशकर्मा जी को प्रदान की गयी, जिसके फलस्वरूप तीन सर्वशक्तिशाली धनुष का निमार्ण हुआ, जिनमें पिनाकी, शांरग व गाण्डिव, जिन्हें शिवजी को ब्रह्माजी द्वारा भेंट किया गया। शिव जी ने शांरग को भगवान विष्णु को दे दिया गया और विष्णु जी के कहने पर बाद में गाण्डिव अजुर्न को प्राप्त हुआ।

नाकोऽपि येन पिहितो मुनिकण्वमूर्धवल्मीकवेणुजधनुस्त्रितयाग्रजन्मा।
यः सप्तशीर्षफणिरूप उदारकर्मा चापस्तमावहसि नाथ! ततः पिनाकी।।[234]

अर्थात्–हे! नाथ आप ही पिनाकी है, व अपने ही कण्व मुनि के शिश पर बने बांबी पर उगे हुए बासं से निर्मित धनुष को आपने धारण किया और असुरों से स्वर्ग की रक्षा हेतु, आपने इस पिनाक धनुष का प्रयोग कर स्वर्ग को पिनाकी के बाणों से आच्छादित कर दिया जिसका स्वरूप सात फनों वाले सर्प के समान है, जिससे जगत का कल्याण सम्भव हो सका। इस कारण आप पिनाकी है।

पिनाक धनुष को धारण करने के कारण ही भगवान शिव को पिनाकी नाम से भी सम्बोधित किया जाने लगा व पार्वती जी को पिनाकिनी। पिनाक धनुष के सम्बन्ध में विवरण बाल्मिकी

---

(233) शुक्ल यजुर्वेद / अध्याय–16 / मन्त्र–51
(234) स्वामी स्वयम्प्रकारगिरि / शिवाष्टोत्तरशतनाम / श्लोक–10 / पृ0–13

रामायण में वर्णित है, कि पिनाक नामक धनुष राजा देवरथ को प्राप्त हुआ, जो राजा जनक के पूर्वज थे। इसी पिनाक धनुष की प्रत्यचां को श्रीराम जी द्वारा चढ़ाया गया व तोड़ दिया गया, जिसके पश्चात् सीताजी द्वारा श्रीराम का वरण किया गया। इस प्रकार कई कथा तथा तथ्य वैदिक साहित्यों में पिनाक के सम्बन्ध में प्राप्त होते है। इसके पश्चात् पिनाक के विषय में यह तथ्य प्राप्त होता है, कि पिनाक धनुष के आकार–प्रकार के आधार पर वीणा का भी निमार्ण हुआ, जिसके विषय में बाल्मिकी रामायण यह कहा गया है, कि रावण जिस वीणा का वादन करते थे, वह वीणा पिनाक धनुष के आकार–प्रकार की प्रतीत होती है। जिसकी झनकार भी पिनाक धनुष की टंकार के समान ही जोरदार थी, इस वीणा के स्वरों में नदी के प्रवाह के ही समान वेग था। बाल्मिकी जी द्वारा इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है।

न जानाति पुरा वीर्य मम युद्धे स राघवः ॥
मम चापमयीं वीणां शरकोणैः प्रवादिताम् ॥42॥

ज्याशब्दतुमुलां घोरामार्तगीतमहास्वनाम् ॥
नाराचतलसंनादां नदीमहितवाहिनीम् ॥
अवगाह्य महारंग वादयिष्याम्यहं रणे॥43॥[235]

परन्तु पिनाक शब्द का प्रयोग पिनाक वीणा या पिनाकी वीणा के रूप में नहीं प्राप्त होता है, विद्वानों द्वारा पिनाक धनुष के रूप में प्राप्त वीणा का वर्णन ही पिनाकी वीणा के नाम से किया है। इससे यह अवश्य ज्ञात होता है, कि उस काल में भी इस प्रकार की वीणा असितत्व में थी, परन्तु लोक व्यवहार में अधिक न होने के कारण इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं प्राप्त होता है।

भरतकृत नाट्यशास्त्र में इस वीणा का वर्णन नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि शोधार्थी का मानना है कि, भरत मुनि द्वारा उन्हीं तथ्यों का वर्णन नाट्यशास्त्र के अर्न्तगत किया गया है, जो नाट्य के लिए आवश्यक है, व सभी छोटी–बड़ी तकनीकी बातों का भी वर्णन किया है, नाट्य संदर्भ में उपयोगी सिद्ध होती है। पिनाक धनुष के समान आकार–प्रकार की वीणा के तथ्य तो वैदिक साहित्य से प्राप्त होते है, परन्तु लोक व्यवहार में प्रयोग होने के प्रमाण प्राप्त नहीं होते है और न ही पिनाकी शब्द का प्रयोग किसी वीणा के संबंध में किया गया

---

(235) बाल्मिकी रामायण / युद्ध काण्ड / सर्ग–24 / श्लोक–42–43

है। इसी प्रकार को तथ्यों के आधार प्रतीत होता है, कि पिनाकी वीणा मध्यकाल में विकसित हुई एक वीणा है। पूर्व में इस आकार प्रकार की वीणा अवश्य असितत्व में थी, किन्तु विकास मध्यकाल में ही होने के साक्ष्य मिलते है। चालुक्य वंश के महाराजा हरिपाल द्वारा अपने 'संगीत सुधाकर' में पिनाकी वीणा का वर्णन किया गया है। मध्यकालीन ग्रन्थों में भी पिनाकी वीणा का वर्णन प्राप्त होता है। मध्यकालीन ग्रन्थकार महाराणा कुम्भा, पं० शारंगदेव, पं० अहोबल, पं० सोमनाथ, आबुल फज़ल आदि मुख्य जिनके द्वारा पिनाकी का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही विद्वानों द्वारा यह स्वीकारा गया है, कि पिनाकी वीणा धनुष के आकार–प्रकार की वीणा थी तथा इसके द्वारा उत्पन्न होने वाले स्वरों में वीर रस के भावों की उत्पत्ति होती है।

एस.एम टैगोर की पुस्तक **यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्यूजिक** में लिखा है, कि पिनाकी वीणा का निर्माण शिव जी द्वारा स्वंय किया गया, जिस कारण पिनाकी वीणा को तन्त्री वाद्यों का पिता भी कहा जाता है।[(236)] सर्वप्रथम शोधार्थी द्वारा **"पं० शारंगदेव जी"** द्वारा वर्णित पिनाकी वीणा सम्बन्धित अध्ययन को स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है, संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय के श्लोक 401 से 410 में पिनाकी वीणा के लक्षणों को कहा है–

पिनाक्यां धनुषः कम्रैकचत्वारिंशदङ्गुला ॥401॥
दैर्घ्ये स्यान्मध्यविस्तारः स्यात् सपादाङ्गुलद्वयम् ॥
अन्ते चाङ्गुलमानेन शिखां कुर्यादधस्तनीम् ॥402॥
सपादाङ्गुलमात्रा तु कार्मुकस्योत्तरा शिखा ॥
कार्यावङ्गुलदैर्घ्यौ च पादोनाङ्गुलपिण्डकौ ॥403॥
खेटकौ शिखयोर्लग्नौ ताभ्यां त्वर्वागुपान्त्ययोः ॥
पादोनमगुलद्वन्द्वं विस्तारे मानमिष्यते ॥404॥
मध्यप्रान्तान्तराले तु विस्तारं कल्पयेत्सुधीः ॥
तन्त्रीमानेन बध्नीयाच्छिखयोर्निपुणो गुणम् ॥405॥
मानं वादनचापे स्यादङ्गुलान्येकविंशतिः ॥
दैर्घ्ये मुष्टौ तु विस्तारोऽत्रामुलिङ्गुलित्रितयोन्मितः ॥406॥
स त्वङ्गुलतृतीयांशः शिखे त्यक्त्वान्तयोर्भवेत् ॥
ऊर्ध्वाधरशिखाद्वन्द्वमानं पादोनमङ्गुलम् ॥407॥
अश्ववालधिकेशोत्थो गुणो वादनधन्वनः ॥

(236) टैगोर, एस.एम. / यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्यूजिक / पृ.–50

तुम्बं धृत्वाथ पादाभ्यां भुवि न्यस्तमधोमुखम् ॥408॥
तत्र लग्नशिखाथोर्ध्वा पिनाकीस्कन्धसंश्रिता ॥
आक्रम्य वामहस्तस्थतुम्बमूलेन तद्गुणम् ॥409॥
ततो दक्षिणहस्तस्थधनुषो वादयेज्ज्यया ॥
रालासंलिप्यास्यां च स्वरस्थानानि निर्णयेत् ॥410॥
एकतन्त्रीवदधराधरतारतया सुधीः ॥
(इति पिनाकीलक्षणम्)

संगीत रत्नाकर के अन्तर्गत सबसे पहले डाँड का वर्णन किया गया है तथा डाँड अर्थात् दण्ड को कम्रा की संज्ञा दी गयी है। पिनाकी वीणा का आकार धनुष के समान होता है, जो लम्बाई में इक्तालिस अंगुल व दण्ड़ का ऊपरी भाग चौडाई में सकरा तथा मध्य भाग सवा दो अंगुल का होता है। इस दण्ड़ के नीचे के भाग को ''अधर शिखा'' व ऊपरी भाग को ''ऊपरी शिखा'' कहा है। दण्ड की दोनों शिखाओं में एक अंगुल के अन्तराल में दो पौन अंगुली के बराबर घुण्डी या खूंटीं लगती है तथा दो माहरों को लगाया जाता है और इनके पीछे दो अंगुल के अन्तराल में ऊपरी भाग से नीचे की ओर छेद किए जाते है। जिनमें वादन हेतु तार को स्थान दिया जाता है व इसके दण्ड़ में तुम्बा स्थापित किया जाता है, परन्तु संगीत रत्नाकर में तुम्बे का वर्णन प्राप्त होता है, पर तुम्बे को लगाने के स्थान तथा नाप का वर्णन नहीं किया गया है।

इसके पश्चात् वीणा वादन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली कमानी का वर्णन किया गया है, जिसे संगीत रत्नाकर में चाप कहा है। चाप अर्थात् कमानी का वर्णन करते हुए कहा गया है, कि कमानी की कुल लम्बाई इक्कीस अंगुल की है। कमानी पर एक अंगुल की दूरी का छोड कर घोड़ें की पूंछ के बालों को बांधे या रेशम के कोए द्वारा निर्मित धागे को बांधने का वर्णन किया गया है। वादन विधी के विषय में कहा गया है कि वीणा वादन के समय भूमि की ओर मुख करके तुम्बे को पंजों के मध्य व दूसरे तुम्बे को कंधे पर रखते हुए बाएं हाथ की अंगुली द्वारा तार दबातें हुए दाहिनें हाथ से कमानी को डाँड के तारों पर रगड़कर इच्छानुसार स्वर उत्पत्ति की जाती है तथा वर्णित है कि एकतन्त्री के समान डाँड में नीचे की ओर जाने पर स्वरों की तारता में वृद्धि होती है।[(237)]

(237) चौधरी सुभद्रा / पं० शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / अध्याय–6 / श्लोक– 401–410

संगीत रत्नाकर के अध्ययन के पश्चात् अन्य शास्त्रकारों द्वारा रचित शास्त्रों का भी अध्ययन शोधार्थी द्वारा किया गया, जिसके सम्बन्धित कुछ तथ्य इस प्रकार है।

संगीतोपनिषत्सारोद्धार में पिनाकी वीणा सम्बन्धित वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है, तथा इसके अतिरिक्त प्रस्तुत प्राप्त वर्णन द्वारा यह ज्ञात होता है कि पिनाकी नामक वीणा में अवश्य तुम्बा रहा होगा व इसका वादन गज या कमान के द्वारा ही किया जाता रहा होगा साथ ही संगीतोपनिषत्सारोद्धार के अनुसार पिनाकी वीणा आकार में बहुत कुछ किन्नरी वीणा के ही समान थी।

''तते वीणादिके वीणाः पिनाकीकिन्नरीमुखाः ॥''
'पिनाकी सधनुस्तुम्बा किन्नर्यो द्वित्रितुम्बिकाः ॥''[(238)]

पिनाकी वीणा का वर्णन करते हुए **''पंड़ित अहोबल''** द्वारा **''संगीत पारिजात''[(239)]** में कहा गया है कि पिनाकी वीणा लम्बाई के आकर की तुलना में देखें तो रूद्रवीणा से छोटी होती है अर्थात् आधी होती है। इसके ड़ॉड को घोड़ें की पूंछ के बालों का प्रयोग करके इस वीणा को धनुष के आकार में बाँधा जाता है तथा जिस स्थान पर पर वीणा में जोड़ आता है, उस स्थान पर कपड़ें के टुकड़े को बाँधा जाता है। पिनाकी वीणा का मध्य भाग को नारियल, काठ (लकड़ी) या कांसें द्वारा निर्मित किया जाता है। बाएं हाथ की अंगुलियों द्वारा पार्श्व भाग को रख दाएं हाथ में कमानी जो धनुषाकार है उसके माध्यम से अभिष्ठ स्वरों की उत्पत्ति की जाती है।

इसी प्रकार **''संगीत सार''** जो **''महाराणा सवाई प्रताप सिंह''[(240)]** द्वारा रचित है में भी वर्णन प्राप्त होता है कि, संगीत सार के वर्णन के अनुसार पिनाकी वीणा सारंगी की जननी है। पिनाकी वीणा के आकार–प्रकार का वर्णन करते हुए कहा है कि यह लम्बाई में आधी है, तथा इस वीणा में तीन से चार तन्त्रियों का वर्णन प्राप्त होता है, पिनाकी वीणा में तीनों सप्तकों में स्वर वादन सम्भव माना है। तथा वादन हेतु कमान जो धनुष के आकार का होता है उसमें घोड़े की पूंछ के बालों का प्रयोग किया जाता है और तन्त्रियों पर इस

---

(238) सुधा कलश / संगीतोपनिषत्सारोद्धार / अध्याय–4 / श्लोक–6 / पृ0–75
(239) पं० अहोबल / संगीत पारिजात / अध्याय–2 / श्लोक–62–64
(240) महाराणा सवाई प्रताप सिंह / संगीत सार / भाग–2 / पृ0.8

कमान की सहायता से घर्षण स्वर की उत्पत्ति के लिए आवश्यकता आनुसार किया जाता है व तन्त्रियों पर इसकी पकड़ बनाने हेतु, कामानी पर लगे बालों पर मोम का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त पिनाकी वीणा की संरचना का जो संगीत रत्नाकर में प्राप्त होता है, उसी के समान संगीत सार में भी वर्णन भी किया है। **''अबुल फज़ल''** द्वारा **''आईन–ए–अकबरी''**[(241)] में धनुषाकर की जिस वीणा का वर्णन प्राप्त होता है, वह पिनाकी वीणा है जिसे एक अन्य नाम ''सुरवितान'' कहा गया है। जिसमें प्रत्यंचा तार की चढ़ायी जाती है। जिसके तुम्बे को बाए हाथ से पकड़ कर दाएं हाथ में कमान को धारण कर वादन किया जाता है।

यह चित्र चित्तौड के तोपखाने से प्राप्त हुआ है, जिसे ई0 पू0 200 से 600 ई0 के मध्य का बताया गया है।[(242)] इस प्रकार प्राचीन काल से वर्तमान तक पिनाक वीणा के अलग–अलग साक्ष्य प्राप्त होते है तथा यह भी सिद्ध होता है, कि यह एक गज वाद्य है, पिनाकी वीणा का स्वरूप वर्तमान सांरगी तथा बेला अर्थात् वायलिन का ही अधुनिक व विकसित रूप है। कई शताब्दियों का एक लम्बा सफर तय कर वर्तमान संगीत का सर्व लोकप्रिय वाद्य के रूप में यह प्रसिद्ध हुए है। विभिन्न विद्वानों द्वारा वर्णित है कि 13वीं शताब्दी में पिनाकी वीणा काफी प्रचार में थी।[(243)] जो वर्तमान वायलिन आदि वाद्यों की उत्पत्ति का आधार वाद्य है, जिसके प्रमाण इतिहास में प्राप्त होते है, जिसे के0 वासुदेव शास्त्री द्वारा संगीत शास्त्र में स्वीकारा गया है, कि पिनाकी वीणा वायलिन की जननी है।

(241) आईने अकबरी / अबुल फज़ल / पृ0–261
(242) मिश्र, लालमणि / भारतीय संगीत वाद्य / चित्र सं0–6 / पृ0–3
(243) शर्मा, अनुपमा / आधुनिक तंत्रवाद्यों की जननी वीणा / पृ0–141

पिनाकी वीणा, ई०पू० 200 से ई० 600, चित्तौड़गढ़

वायलिन का भारतीय नाम बेला है। जिसे अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने में कई वर्षों को समय लगा है। पाश्चात्य देशों में धनुष के उपयोग करने का इतिहास भारतीय सभ्यता की तुलना में अधिक पुराना नही है। भारतीय योद्धाओं का शौर्य तथा पराक्रम से परिपूर्ण युद्धों का मुख्य शस्त्र सदैव ही धनुष रहा है। जिसके प्रत्यक्ष परिणाम ई0 से भी पूर्व 3500 में प्राप्त होते है। इस प्रकार धनुष निर्मित वाद्यों के प्रयोग के साक्ष्य भी इसी पावन धारा से प्राप्त होते है। ग्रन्थों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर प्राप्त वीणाओं जिनके नाम है पिनाकी, कपिर्शीषनी, कर्मा नामक वीणा का वर्णन प्राप्त होता है। जिसमें पिनाकी शिव वीणा है, जो धनुष के आकार की थी। पिनाकी वीणा की शिखाएं धनुष के समान बांधी जाती है।[(244)] जिसमें आधार या नीचे के भाग में तुम्बा लगाया जाता है तथा वादन हेतु, जिसे पांव का सहारा दे कर बजाया जाता है। बाएं हाथ से तन्त्रियों को दबाते हुए दाहिने हाथ द्वारा कमानी को संचालित करते हुए वादन किया जाता है। इस प्रकार समस्त प्राप्त तथ्यों को ध्यान से देखा जाए तो सभी तथ्य वायलिन अर्थात् बेला के आकार प्रकार व वादन विधी के समान प्राप्त होते है। वर्तमान में प्राप्त वायलिन का स्वरूप पिनाकी तथा कच्छपी वीणा के

(244) सेठ रेखा/भारतीय तन्त्रा वाद्यों की उत्पति एवं विकास/पृष्ठ 149..

मिश्रण से निर्मित प्रतीत होता है अर्थात् कछुंए के समान मध्य भाग से उठा हुआ तथा दोनों छोरों से धनुष के समान।[245]

5.2.9.1 वायलिन / बेला

वायलिन को बेला नाम से भी प्रसिद्ध वाद्य है, जिसके भारतीय तथा विदेशी वाद्य होने के संदर्भ में कई मतान्तर पाए जाते है। प्रत्येक विद्वान को वायलिन की उत्पत्ति के संदर्भ में अलग–अलग मत है और वर्तमान में विदेशी प्रभाव के अर्न्तगत वायलिन को पूर्ण रूप से विदेशी वाद्य स्वीकारा जाता है। शोधार्थी द्वारा कई विद्वानों के मतों का अध्ययन के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि वायलिन का आधार तो भारतीय ही है, परन्तु साक्ष्यों के आभाव में इसे विदेशी वाद्य के रूप में स्वीकारा जाना लोगों को सहज प्रतीत हुआ है, जिस कारण एक भारतीय वाद्य विदेशी वाद्य के रूप में पहचाना जाने लगा।

वायलिन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वायलिन को गोस्पर डुइफोप्रगर द्वारा अविष्कृत किया गया तथा पद्मभूषण डॉ० एन० राजम् का भी यही मत है कि 16वी० शताब्दी के उत्तार्द्ध में गोस्पर डुइफोप्रगर ने ही वायलिन का अविष्कार किया।[246]

वयलिन के विषय में स्व० पं० ओंकार नाथ ठाकुर द्वारा अपनी पुस्तक संगीतांजलि में वायलिन का वर्णन करते हुए कहा है कि भारत के प्राचीन मंदिरों आदि में कुछ ऐसी प्रतिमाएं है, जो वर्तमान में प्रयुक्त हो रहे वायलिन से बहुत कुछ समानता रखते है।[247] प्रो० आर० पी० शास्त्री द्वारा एक साक्षात्कार में कहा गया है कि राजस्थान का एक लोकवाद्य है, जिसे रावणहत्था कहा जाता है, यह वाद्य गज अथवा कमानी की सहायता से बजाया जाता है, जिसके बजाने की शैली बहुत कुछ वायलिन के समान ही होती है। इस रावणहत्था नामक वाद्य का अविष्कार लंकापति रावण द्वारा किया गया, जिसका वादन रावण द्वारा स्वंय भी किया जाता था।[248] भारत में प्राचीन काल से ही गज वाद्यों के वादन की परम्परा चली आ रही है, जिसमें सारिकाओं सहित व सारिकाओं से रहित वाद्य

(245) देवांगन तुलसीदास / बेला वादन शिक्षा / पृष्ठ 9.
(246) राजम् डॉ०एन० / बेला बोधक / पृ०–9–11
(247) ठाकुर पं० ओंकारनाथ / संगीतांजलि / पृ०–113–119
(248) सिंह जे० पी० / भारतीय संगीत में वायलिन का प्रयोग, महत्व एंव वादन / पृ०–10–11

तथा रावण द्वारा निर्मित यह रावणहत्था में दो तन्त्रियों वाले गज वाद्य के रूप में देखने को मिलता है। जिसका वर्णन नान्यदेव, कुम्भा जैसे कई विद्वानों द्वारा किया गया है।(249)

वयलिन (बेला)

गज वाद्यों की श्रेणी में पिनाकी वीणा का वर्णन संगीत सुधाकर में पं० हरिपाल द्वारा अपने ग्रन्थ में किया गया है।(250) इन ग्रन्थों के आधार पर यदि गज वाद्यों के चलन व प्रयोग के काल को देखा जाए, तो गज वाद्यों का प्रचार रामायण काल से ही देखने को मिलता है।(251) डॉ० कर्टसेक जी द्वारा कहा गया है कि गज वाद्यों से सम्बंधित ग्रन्थ 10 वीं० तथा 11वीं० शताब्दी में स्पेन से प्राप्त होते है।(252) विश्व संगीत कोश से प्राप्त वायलिन के वर्णन में ई० एन० डोरिगं द्वारा वर्णित किया गया है, कि अति प्राचीन समय से ही गज वाद्यों तथा लम्बी गर्दन के संयोग से वादित होने के साक्ष्य भारतीय संस्कृति से प्राप्त होते रहे है।(253) वर्तमान वायलिन के समान ही वाद्य को धारण किए हुए एक महिला की मूर्ति दक्षिण भारतीय मंदिर अग्यस्तेश्वर में जो मैसूर जिले में स्थित है, में भी प्राप्त होती है। यह

(249) कुम्भ / संगीत राज / भरत कोश / पृ०–550
(250) कुम्भ / संगीत राज / भरत कोश / पृ०–550
(251) महाडिक डॉ० प्रकाश / भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य / पृ०–141–142
(252) Seck Kart/The History of Musical Instrument/p.-275
(253) Doring Dr. E.N The Encyclopedia/p.2367

एक 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में निर्मित शिल्प है, जिसमें गज के संचालन के अंकन को स्पष्ट देखा जा सकता है।[254]

इसी प्रकार नटराज मंदिर चिदम्बरम् तथा मल्लिकार्जुन मंदिर विजयवाड़ा से भी प्राप्त होते है, जिसमें वायलिन का वर्तमान स्वरूप व गज को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह शिल्प 10वीं शताब्दी के निकट के माने जा रहे है।[255] शोधार्थी को ऐसा प्रतीत होता है, कि इतने सारे तथ्य वायलिन को भारतीय वाद्य होने के सम्बन्ध में प्रस्तुत करने के पश्चात् भी वायलिन को भारतीय वाद्य न मान कर विदेशी वाद्य ही माना जाता है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है, कि वर्तमान स्वरूप की प्राप्ती कई प्रयोगों के पश्चात् प्राप्त हुई है। जिसमें पाश्चात्य विद्वानों का काफी बड़ा योगदान है, क्योंकि भारत से जब यह बेला वाद्य विदेश जा पहुँचा, उसके पश्चात् ही इस वाद्य की बनावट में कई परिवर्तन समय–समय पर किए गए और जब विदेशी ईस्ट इंड़िया कम्पनी भारत आयी, तो उसी के साथ वायलिन वाद्य पुनः भारत आया और फिर यह एक विदेशी वाद्य के रूप में स्वीकारा जाने लगा और वादन शैली भी पूर्ण रूप से पाश्चात्य वादन शैली पर आधारित हो गयी।

वायलिन वाद्य सर्वप्रथम दक्षिण भारत में स्थित फ्रांसीसी कालानियों में सुना जाने लगा, जिसके पश्चात् वायलिन को दक्षिण भारत के विख्याता रचयिता पं० मुत्तु स्वामी दीक्षितर के कनिष्ठ भाई बालूस्वामी दीक्षितर के द्वारा सुना गया और वायलिन की मधुर ध्वनि से आकर्षित होकर एक पाश्चात्य वायलिन वादक से तीन वर्षों तक वायलिन की शिक्षा प्राप्त की, जिसके पश्चात् बालूस्वामी द्वारा दक्षिण भारत में वायलिन का सफल रूप से प्रस्तुती प्रस्तुत की।[256] इसके पश्चात् आधुनिक युग के उत्तरार्द्ध में निर्मित विभिन्न प्रकार के शिल्पों, चित्रों व कलाकृतियों में वायलिन को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। इस प्रकार दक्षिण के पश्चात् उत्तर भारत में भी वायलिन का प्रयोग आरम्भ हुआ और वायलिन को शास्त्रीय तथा सुगम दोनों रूपों में प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार भारत से पाश्चात्य तथा पुनः भारत लौटकर वायलिन एकल वादन के क्षेत्र में शास्त्रीय संगीत का महत्वपूर्ण वाद्य के रूप में जाना जाने लगा।

(254) साम्बामूर्ति प्रो० पी०/ए डिक्शनरी ऑफ साउथ इंड़ियन म्यूजिक/भाग–2/पृ०–353
(255) महाडिक डॉ० प्रकाश/भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य/पृ०–142
(256) साम्बामूर्ति प्रो० पी०/ए डिक्शनरी ऑफ साउथ इंड़ियन म्यूजिक/भाग–1/पृ०–37

इस प्रकार वायलिन एक ऐसे वाद्य के रूप में स्थापित हुआ, जो भारत के साथ–साथ विदेश मे भी लोकप्रिय वाद्य के रूप में सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। वायलिन वादन के अर्न्तगत भारत में आलाप, बंदिशों के साथ–साथ ध्रुपद, ख्याल, गायकी अंग की गतों व बंदिशों, मसीतखानी, रज़ाखानी गतों सभी का वादन प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें सभी प्रकार के रागों व क्लिष्टतम तानों का भी वादन किया जाता है।

5.2.9.1.1 वायलिन के अंग(257)

बॉड़ी– वायलिन की पूरी बॉड़ी अर्थात् जो पूरा ढ़ाचा होता है, उसे ही बॉडी कहा है, यह ढ़ाचा पूर्णतः अन्दर से खोखला होता है, जिससे स्वरों में गूंज पैदा होती है।

फिंगर बोर्ड़– वह भाग जहाँ स्वरों का वादन अंगुली की सहायता से किया जाता है। वह भाग फिंगर बोर्ड़ कहलाता है।

टेल–पीस– टेल पीस उस भाग को कहा जाता है, जहाँ खूटियों को लगाया जाता है व खूटियों के लिए सुराख किए जाते है। वायलिन में खूटियों व तन्त्रियों की संख्या चार कही गयी है।

एण्ड–पिन– टेल–पीस के आग जहाँ तन्त्रियों को अटकाया व बांधा जाता है, उस स्थान को एण्ड़–पिन कहा जाता है।

ब्रिज– ब्रिज को घुडच भी कहा जा सकता है। जिस पर तन्त्रियों को रखा जाता है।

साउड़–पोस्ट– साउड़–पोस्ट वायलिन के घुड़च के नीचे स्थित होता है।

बो अर्थात् गज–बो अर्थात् गज को 5 भागों में विभक्त किया गया है।

गज– गज को कमानी भी कहा जाता है, सम्पूर्ण छड़ी जिसके माध्यम से वायलिन पर घर्षण कर इच्छित स्वरों की प्राप्ती की जाती है।

बाल– गज पर बालों को कसा जाता है, उन बालों अर्थात् केशों को तारों पर घषर्ण किया जाता है, और स्वरों की उत्पत्ति होती है।

---

(257) महाडिक डॉ० प्रकाश/भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य/पृ०–145

स्क्रू– स्क्रू को गज पर लगे बालों को नियंत्रित करने हेतु लगाया जाता है, जिससे गज के बालों को कसा जाता है।

नट–गज पर एक ओर स्क्रू तथा दूसरी ओर नट लगाया जाता है। जिस पर बाल कसे जाते है।

हैड़–गज के अन्तिम छोर को हैड़ कहा जाता है।

रेंजिन– रेजिन एक प्रकार का मोम होता है, जिसकी सहायता से गज के बालों को व्यवस्थित किया जाता है, इस मोम को गज पर रगड़ने से बाल व्यवस्थित होते है और तन्त्रियों पर आसानी से गज संचालित किया जा सकता है।

वादन विधि के अर्न्तगत वायलिन में मुख्य रूप से चार तन्त्रियाँ होती है, जिन्हें जी, डी, ए, ई में मिलाया जाता है। इसके अतिरिक्त वायलिन को प़ सा प सां, स़ प़ स प तथा म़ सा प रें, प़ रे ध गं, इस प्रकार के विभिन्न प्रकारों द्वारा वादक अपने आवश्यकतानुसार मिलाते है।[(258)]

5.2.9.1.2 पद्म भूषण वी० जी० जोग

पद्म भूषण वी० जी० जोग को विष्णु गोविन्द जोग के नाम सक भी जाना जाता है, जिन्होनें वायलिन वादन के क्षेत्र में कई महान कार्य किए, जोग जी का जन्म 14 फरवरी 1922 में सतारा जिले के गोविन्द गोपाल जोग के घर हुआ।[(259)] सांगीतिक शिक्षा का शुभारम्भ 1927 में श्री अत्थावले द्वारा आरम्भ हुई, जिसके पश्चात् श्री कृष्णम् भट्ट जो कर्नाटकीय पद्धिति के गुरू थे, के शिष्य विज्ञानेश्वर शास्त्री द्वारा वायलिन की शिक्षा आरम्भ की। जोग जी को उस्ताद अलाउद्दीन खाँ तथा पं० एस० एन० रतनजनकर जैसे गुरूओं का मार्गदर्शन भी प्राप्त हुआ। जोग जी द्वारा प्राप्त होने वाले मार्गदर्शनों को पूर्णतः आत्मसात करते हुए, रियाज व परिश्रम के द्वारा समस्त संगीत जगत में अपना परचंम फहराया।

इसके पश्चात् जोग जी द्वारा लखनऊ स्थित मैरिस कॉलेज, जो वर्तमान में भातखण्ड़े संस्कृति विश्व विद्यालय के नाम से जाना जाता है, में शिक्षक के पद को ग्रहण किया, और

---

(258) महाडिक डॉ० प्रकाश/भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य/पृ०–147
(259) गर्ग लक्ष्मीनारायण/हमारे संगीतरत्न/पृ०–512

अपने रचनात्मक तथा सृर्जनात्मक स्वभाव को निरन्तर बनाए रखा और वायलिन में नए–नए परिक्षणों को करते रहे और वायलिन के टोन पर कार्य किया और बाईस तरब के तारों को स्थापित किया, जिसकी प्रेरणा जोग जी द्वारा सारंगी वाद्य से प्राप्त की गयी। इस तरब की ध्वनि को माइक्रोटोन कहा गया, तथा इसके पश्चात् वह जिस भी कलाकार द्वारा भेंट करते उससे कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य प्राप्त करते, और पचास के दशक तक जोग जी का नाम वायलन की संगतकारी के क्षेत्र में अद्वितीय रूप से जाना जाने लगा।[260] जोग जी द्वारा लखनऊ, कलकत्ता, दिल्ली आदि कई आकाशवाणी में 1953 से कार्य करना भी आरम्भ कर दिया, इसके अतिरिक्त वायलिन के साथ लगभग सभी कलाकारों के साथ संगत का भी कार्य किया जिसमें फ़ैयाज़ खाँ, बड़े गुलाम अली, कृष्ण राव पण्डित, पं० विनायक राव पटवर्धन इत्यादि के नाम सम्मिलित है, सांरगी, बांसुरी, सरोद, सितार आदि सभी के मूर्धन्य कलाकारों के साथ जुगलबंदी भी प्रस्तुत कर चुके है। महाराष्ट्र क्षेत्र में जुगलबंदी का शुभारम्भ करने का सफल कार्य मुख्य रूप से जोग जी द्वारा ही सम्पन्न हुआ है व वायलिन के प्रचार–प्रसार में भी जोग जी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। जिसे जोग जी द्वारा देश–विदेश के कोने–कोने तक अपने प्रयासों द्वारा पहुँचाया। जोग जी को वायलिन का पयार्य के रूप में भी स्वीकारा जाता है, क्योंकि जोग जी के ही अथक प्रयासों, परिक्षणों व रचनात्मक सोच द्वारा ही वायलिन का वर्चस्व स्थापित होना सम्भव हुआ है। जोग जी द्वारा रचित पुस्तक को 1944 में प्रकाशित किया गया जो वायलिन की शिक्षा व तकनीकों पर आधारित पुस्तक है, इस प्रस्तक का नाम ''बेला शिक्षा'' है।

जोग जी द्वारा श्रीमती जरीन दारूवाला, रणधीर राय, शिशिर कणधर चौधरी आदि को वायलिन का प्रशिक्षण प्रदान कर वायलिन के क्षेत्र में अभूतपूर्व व अतुल्नीय योगदान प्रस्तुत किया गया है।[261] संगीत के क्षेत्र में अपने इस महान योगदान हेतु भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण से सम्मानित किया गया, साथ ही संगीत नाटक अकादमी तथा उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी जैसे अकादमी से भी सम्मानित किया गया। इस महान वायलिन वादक का वायलिन के सुर 31 जनवरी 2004 को 81 वर्ष की आयु में कलकत्ता में शान्त हो गया और संगीत जगत को गहरे शोक से भर गया।

(260) शर्मा वीना/हिन्दुस्तानी संगीत में तन्त्र वादकों का योगदान/पृ०–138–140
(261) शर्मा वीना/हिन्दुस्तानी संगीत में तन्त्र वादकों का योगदान/पृ०–141

5.2.9.1.3 पद्मभूषण एन० राजम्

1938 में पिता श्री नारायण अय्यर तथा माता श्रीमती अम्मनी अम्माल के घर केरला के एरनाकुलम् में पुत्री एन० राजम् जी का जन्म हुआ, जिसकी संगीत की आरम्भिक शिक्षा पिता द्वारा ही हुयी और आरम्भिक शिक्षा कर्नाटकीय संगीत की शिक्षा के रूप में प्राप्त की। पिता श्री नारायण अय्यर स्वयं एक प्रतिष्ठित वायालिन वादक थे और एन० राजम् जी द्वारा पिता से वायालिन की शिक्षा प्राप्त हुयी।[(262)] इसके पश्चात् एन० राजम् जी का आर्कषण उत्तर भारतीय संगीत की ओर हुआ और पं० ओंकार नाथ ठाकुर के संरक्षण में वायलिन का ज्ञान प्राप्त कर गायकी अंग के वादन की शिक्षा को ग्रहण किया। तत्पश्चात् परब अंग के वादन और उपशास्त्रीय शैली के वादन हेतु पं० महादेव मिश्र जी का मार्गदर्शन प्राप्त किया। एन० राजम् जी की पुत्री संगीता शंकर तथा आपकी भतीजी कला रामनाथ वादन परम्परा को बढ़ाने का कार्य कर रही है।

डॉ० एन० राजम् जी द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत कला संकाय में अध्यक्ष पद पर शोभायमान रही। डॉ० एन० राजम् जी एक दक्षिण भारतीय महौल में पली–बडी तथा संगीत की विरासत को आत्मसात करने के बावजूद भी उत्तर भारतीय संगीत के प्रति विशेष लगाव रहा है, इसी लगाव के फलस्वरूप ही वह उत्तर भारतीय संगीतज्ञों को सुनने का कोई भी मौका नहीं गवांती थी, साथ ही वादन में दोनों पद्धितियों की शैलियों का स्पष्ट संतुलन बना कर प्रस्तुत किया है, व उत्तर भारतीय वायलिन को गायकी अंग के साथ प्रस्तुत करने का श्रेय आपको ही जाता है।[(263)] आपका वायलिन वादन मानव कठं के अनुरूप ही प्रतीत होता है, जिसका ज्ञान आपने अपने गुरू पं० ओंकार नाथ ठाकुर जी के सानिध्य में प्राप्त किया। आपका वादन में रसात्मकता तथा सौन्दर्य का समिश्रण अत्यंत लुभावन प्रतीत होता है। एन० राजम् जी द्वारा बताया गया कि बाल्यकाल की कर्नाटकीय संगीत की शिक्षा द्वारा वैचारिक अभ्यास प्रबल हो चुका था, जो कि वादन शैली को अधिक मधुर व रस से परिपूर्ण बनाती है। विश्वभर को अपने वायलिन के स्वरों द्वारा निरन्तर सुसज्जित करती रहती है, जिसमें रूस, जर्मनी, अमेरिका इत्यादि देश सम्मिलित है।

(262) बसंत / संगीत विशारद / पृ०–514
(263) शर्मा वीना / हिन्दुस्तानी संगीत में तन्त्र वादकों का योगदान / पृ०–142

1967 में सुर सिंगार संसद द्वारा डॉ० एन० राजम् को सुरमणि की उपधि से अलंकृत किया गया, तथा 1984 में डॉ० एन० राजम् को भारत सरकार के प्रतिष्ठित पुरस्कार पद्मश्री से अलंकृत किया गया। साथ ही पद्मश्री एन० राजम् को उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा मदनमोहन मालवीय पुरस्कार, तथा कुलाधिपति राज्यपाल माननीय श्री टी० वी० राजेश्वर द्वारा डी० लिट० की मानद उपाधि से भी अलंकृत किया गया।[(264)] वर्तमान में भी अपने शिक्षण के कार्य द्वारा नवीन पीढी को अपना संगीतरूपी आशीष प्रदान कर रही है। शोधार्थी आपके उत्तम स्वस्थ की कामना करती है।

5.2.10 निःशंक वीणा

निःशंक वीणा का वर्णन संगीत रत्नाकर के अर्न्तगत समस्त वीणाओं के पश्चात् अन्तिम वीणा के रूप में किया गया है तथा इस वीणा का सर्वप्रथम व आरम्भ संगीत रत्नाकर से ही माना जाता है। संगीत रत्नाकर के पश्चात् रचित कुछ ग्रन्थों में भी निःशंक वीणा का वर्णन प्राप्त होता है, जिनमें महाराणा कुम्भा रचित संगीत साज, तानसेन कृत संगीत सार व वाद्य प्रकाश नामक ग्रन्थ सम्मिलित है।[(265)] इस वीणा के नाम के कारण इस वीणा को पं० शारंगदेव जी की वीणा के रूप में ही स्वीकारा जाता है, क्योंकि निःशंक पं० शारंगदेव जी का उपनाम था[(266)] और विद्वनों द्वारा ऐसी मान्यता है, कि पं० शारंगदेव जी द्वारा इस वीणा का अविष्कार किया गया तथा समय व परिवर्तन के काल में यह वीणा लुप्त होती गयी। इस प्रकार शोधार्थी इस शोध प्रबन्ध की आवश्यकतानुसार संगीत रत्नाकर वर्णित निःशंक वीणा का वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। संगीत रत्नाकर के अर्न्तगत श्लोक 411 से श्लोक 417 के मध्य निःशंक वीणा का वर्णन प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है–

बध्यप्रान्तातिरिक्तेंऽशे तन्त्री दैर्घ्ये चतुष्करा॥411॥
उपरिस्थे क्वचित् काष्ठे प्रान्तेनैकेन बध्यते॥
प्रान्तान्तरेणान्यकाष्ठेऽधस्थे सार्धकरायते॥412॥

---

(264) शर्मा वीना/हिन्दुस्तानी संगीत में तन्त्र वादकों का योगदान/पृ०–143
(265) मिश्र, लालमणि/भारतीय संगीत वाद्य/पृ0–45
(266) गुप्ता,(डॉ)अतुल कुमार/भारतीय तंत्री वाद्यों का ऐतिहासिक विवेचन/पृ०–94

स्थौल्येनालापिनीतुल्ये त्यक्त्वाग्रादङ्गुलद्वयम् ॥
तन्त्री बर्दध्वा ततोऽधस्तात् तुम्बमाबद्धय दारु तत ॥413 ॥

वामोरुमूलाक्रान्ताग्रं जङ्घायां कुञ्चिताकृतौ ॥
भूलग्नबाह्यपार्श्वायां वामायां न्यस्य जङ्घायां ॥414 ॥

आक्रम्य वामेतरया पिनाक्यामिव वादनम् ॥
धनुषा वामहस्तस्थतुम्बकेन च सारणा ॥415 ॥

आर्द्रचर्मकृतां शुष्कां पेशी कोणान्वितां खराम् ॥
वामेनादाय तत्कोणेनाथवा सारणा भवेत् ॥ 416 ॥

यत्र निःशङ्कवीणा सा शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता ॥
त्रिस्थानस्वररागादिव्यक्तिः संजायते तया ॥417 ॥(267)

अर्थात्—चार हाथ लम्बें तार को वीणा के ऊपरी भाग में मौजूद लकड़ी पर बाँधा जाता है व वीणा के ड़ाडं की मोटाई आलापिनी के समान होती है, जो लगभग ड़ेढ़ हाथ लम्बी होती है व निचले में एक अतिरिक्त लकड़ी होती है, जिसके आगे के भाग से दो अंगुल का फासला छोड़कर तार को बाँध नीचे अवस्थित तुम्बा बाँधा जाता है और वर्णित किया है, कि इसका वादन पिनाकी वीणा के समान हो, जिसमें बायीं ओर की जांघ से दबा अर्थात् गोद में रख व दाएं हाथ में धनुष अर्थात् चाप या कमानी की सहायता से वादन किया जाए तथा दूसरी विधि का वर्णन करते हुए कहा है, कि हस्त संचालन या सारणा करने हेतु बाएं हाथ का प्रयोग किया जाता है तथा वादन हेतु चमड़े को पूर्ण रूप से सुखाकर सख्तकर उसे कोण के आकार का बना कर बाएं हाथ द्वारा सारणा की जाती है।

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा निःशंक वीणा का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जिसके माध्यम से तीनों सप्तकों का वादन सम्भव होता है अर्थात् स्वर व रागों का वादन व अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार दाएं हाथ में धनुष को धारण कर तार पर उसे घर्षण अर्थात् रगड़े व बांए हाथ में बट्टा या कोण पकड़कर वादन अर्थात् सारणा या हाथ का संचालन किया जाता है, जिसके द्वारा स्वरों की उत्पत्ति होती है। संगीत रत्नाकर के अर्न्तगत वादन लक्षण व विधि का वर्णन प्राप्त नहीं होता है।

(267) चौधरी सुभद्रा / पं० शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / अध्याय–6 / श्लोक–411–417

संगीतराज व संगीतसार के अर्न्तगत निःशंक वीणा का वर्णन कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है।

अथोच्यते मया सम्यग्वीणा निःशङ्कसंज्ञिका॥
रक्तचन्दनजा सा स्या (च्) छाकदारुभवा (ऽ) थवा॥49॥

षट्त्रिंशदङ्गलकाष्ठेऽधस्थे (ऽ) न्यस्मिन्निबन्ध्यते॥
स्थौल्येनालापिनी तुल्ये प्रागा (त्) त्यक्ता (क्त्वा) (ऽ)ङ्गुलद्वयम्॥50॥

तन्त्री, ततस्त्वधस्ताच्च बध्नीयात्तुम्बकं दृढम्॥
बन्धप्रान्तातिरिक्तेंऽशे तन्त्रीदैर्ध्ये चतुष्करा॥51॥

उपरिस्थे क्वचित् काष्ठे प्रान्तेनेकेन केनचित्॥
प्रान्तान्तरेण बध्नीयाद् दारु तत् कुञ्चिताकृतौ॥52॥

भूलग्नबाह्यपार्श्वायां जङ्घायां वामपार्श्वतः॥
वामोरुमूलाक्रान्ताग्रं न्यस्याक्रम्य तु जंघया॥53॥

वामादितरया तस्य (स्यां) पिनाक्यामिव वादनम्॥
धनुषा वामहस्तस्थतुम्बकेन च सारणा॥54॥

आर्द्रचर्मकृतां पेशीं शुष्कां कोणयुतां स्वरान् (खराम्)॥
वामेनादाय हस्तेन तत्कोणेनाथवा भवेत्॥55॥

सारणा यत्र वीणासौ त्रिस्थानस्वरहेतुतः॥
त्रिस्थानरागव्यक्त (वत्य) र्थकृष्णभूपेन कीर्त्तिता॥56॥

इति निःशङ्कमल्लेन वीणा निःशङ्कसंज्ञिका॥
निःशङ्कमतविज्ञेन निःशङ्क निःश्चलीकृता॥57॥(268)

(संगीतराज, पाण्डुलिपि,वाद्याध्याय)

चार हाथ के लम्बाई के तार को वीणा के सिरहाने से नीचे तुम्बें तक बाधें और दूसरे सिरे को मेरू पर स्थित काठ अर्थात् लकडी से बाँधें वीणा का मध्य भाग अब ड़ेढ़ हाथ का होगा, उसमें एक काठ लगाए और बचे हुए तार को आगे की ओर बाँधिए। लगे हुए काठ की लम्बाई भी ड़ेढ़ हाथ ही होगी। अब इसे बाएं जांघ के नीचे दबा दाएं भाग को जमीन पर रख पिनाकी के समान ही वादन करें। स्वर उत्पत्ति हेतु बांए हाथ में चमड़े के बने

(268) मिश्र लालमणि/भारतीय संगीत वाद्य/(संगीतराज, पाण्डुलिपि,वाद्याध्याय) /पृ0–45

दस्ताने को धारण करें और इस प्रकार के वादन से निःशंक वीणा के होने का भान होता है, जिसमें तीनों सप्तकों का वादन सम्भव होता है व स्वर निष्पत्ति होती है।(269)

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय के माध्यम से शोधार्थी द्वारा संगीत रत्नाकर में वर्णित तंत्री वाद्य अर्थात वाद्याध्याय में वर्णित समस्त वीणाओं का अध्ययन कर उन वीणाओं के वर्तमान स्वरूप को खोजने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत तंत्र शब्द का अर्थ उसकी व्याख्या को वर्णित किया गया है, तत्पश्चात् संगीत रत्नाकर में वर्णित समस्त दस वीणाओं को वर्णित करते हुए, उनके वर्तमान स्वरूप व संबंधित कलाकारों के विषय में वर्णन प्रस्तुत किया गया है। संगीत रत्नाकर के वाद्याध्याय के अंतर्गत तंत्री वाद्यों के संबंध में एकतंत्री वीणा, नकुल वीणा, त्रितन्त्री वीणा, विपंची वीणा, चित्रा वीणा, मत्तकोकिला वीणा, किन्नरी वीणा, पिनाकी वीणा तथा निःशंक वीणा का वर्णन प्राप्त होता है। जिसमें से कुछ वीणाएं वर्तमान प्रयोग में लायी जा रही है। कुछ वीणाएं विलुप्त हो चुकी है, कुछ को साक्ष्यों के अभाव में लुप्त मान लिया गया है तथा कुछ वीणाएं वर्तमान में भी लोक वाद्यों के रूप में प्रचलित है। वीणाओं के परिवर्तित स्वरूप से प्राचीन वीणाओं को लुप्त मान लेना उचित प्रतीत नहीं होता है।

गहनता से अध्ययन किया जाए, तो यह निष्कर्ष प्राप्त होता है, कि कोई भी वीणा लुप्त नहीं है, परंतु रूप में परिवर्तन अवश्य दृष्टिगोचर होता है। वर्तमान में जितनें भी तन्त्री वाद्य प्रयोग में लाए जा रहे है वह किसी ना किसी वीणा का आधुनिक स्वरूप ही है, क्योंकि इतिहास ही वर्तमान का आधार है और इतिहास के अध्ययन द्वारा ही वर्तमान में नवीन शैलियों द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है। वर्तमान में प्रयुक्त हो रहे सितार, विचित्र वीणा, सरोद, संतूर इत्यादि सभी तंत्री वाद्य समय के गर्भ से ही प्राप्त हुए है। इन्हीं को वादकों द्वारा वादन क्रिया की सुविधा के अनुरूप परिवर्तित किया गया है। एकतंत्री वीणा को घोष, घोषवती इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। एक मत के अनुसार ब्रह्मा जी की वीणा होने के कारण एकतन्त्री वीणा को ब्रह्मी वीणा के नाम से भी जाना गया है। जिसके दर्शन से गौ–हत्या जैसे महापाप भी मुक्ति प्राप्ति हो जाती है।

(269) मिश्र लालमणि / भारतीय संगीत वाद्य / (तानसेन कृत–संगीतसार / भाग–2 / पृ०–46) / पृ0–46

इस प्रकार एकतंत्री को अत्यंत प्राचीन वीणा कहा गया है व तथ्यों के आधार पर एकतन्त्री वीणा को विचित्र वीणा कहा गया है, जो सारिका रहित वाद्य है। इस तथ्य की पुष्टि पंडित लालमणि मिश्र जी द्वारा भी की गई है। इसी क्रम में त्रितन्त्री वीणा से सितार, तंबूरा, मत्तकोकिला वीणा से स्वरमंडल इत्यादि वाद्यों के विषय में शोधार्थी द्वारा वर्णन प्रस्तुत किया गया है कि भारतीय सभ्यता अति प्राचीन काल से ही विश्व की सबसे समृद्ध तथा सुसंस्कृत सभ्यताओं के रूप में स्वीकारी गई है। भारतीय सभ्यता स्थापत्य, कला, राजनीति, विज्ञान इत्यादि सभी क्षेत्र में सभी प्रकार से परिपूर्ण मानी जाती है। हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ों से मिले साक्ष्य संपूर्ण विकसित नगरी व्यवस्था का उत्कृष्ट उदाहरण है, जो भारतीय सभ्यता की संस्कृति को और समृद्ध बनाती है। इस क्रम में जब अध्ययन किया जाता तो ज्ञात होता है कि जब इस सभ्यता को इतनी समृद्धता प्राप्त है, तो उसका संस्कृतिक तथा धार्मिक पक्ष कितना समृद्ध होगा, क्योंकि भारत उस दिव्य धरती के रूप में स्वीकारा जाता है, जहां वेदों, वेदांगों, उपनिषदों तथा पुराणों की रचना हुई है और यही वेद भारतीय संगीत का भी आधार कहे गए है। सामवेद को संगीत का आधार ग्रंथ माना जाता है, ऋग्वेद की ऋचाओं का ही गेय रूप सामवेद में प्राप्त होता है। सामवेद में गायन, वादन, नृत्य सभी का वर्णन प्राप्त होता है। सामकालीन संगीत देवताओं की उपासना हेतु प्रयोग में लाया जाता था, जिसके पश्चात् संगीत मार्गी तथा देसी संगीत के रूप में विभक्त हुआ और देसी संगीत लोकरंजन हेतु प्रयोग किया जाने लगा। संगीत के इस रूप द्वारा ही विभिन्न प्रकार के वाद्यों का निर्माण स्वाति तथा तंबूरू मुनि द्वारा किया गया।

इस प्रकार तत्, अवनद्ध तथा घन वाद्यों की उत्पत्ति हुयी। एक वाद्य से दूसरे वाद्य का निर्माण कुछ परिवर्तनों व कुछ निर्माण की आवश्यकता अनुसार व वादन की सुविधा अनुसार किया जाने लगा। इस प्रकार से इतना समृद्धता से परिपूर्ण संगीत के वाद्यों की नींव स्थापित हो गयी। विचार का विषय यह है, कि जब भारतीय संस्कृति इतनी परिपक्व और समृद्ध थी, जिसके साक्ष्य ग्रंथों, शिलालेखों, अभिलेखों इत्यादि से प्राप्त होते है तो यह कैसे संभव है, कि वर्तमान में प्रयुक्त होने वाले सभी वाद्य फारसी, ईरानी, यूरोपीय, अरबी आदि देशों से ही भारत आए? इन सभी तथ्यों के अध्ययन के पश्चात् शोधार्थी को यह प्रतीत होता है, कि जो भी तंत्री वाद्य जो वर्तमान में भारतीय संगीत कला में प्रयोग किए जा रहे है या जो संगीत रत्नाकर में वर्णित तंत्री वाद्य प्राप्त होते है, वह सभी तंत्री वाद्य पूर्ण रूप

से भारतीय वाद्य ही है। विदेशी आक्रमणों, व्यापारियों के आगमन आदि द्वारा जो भारतीय संस्कृति को क्षति पहुंचाई गई, उसी का निष्कर्ष है कि भारतीय सभी वाद्यों को विदेशी वाद्य कहा जाने लगा। इस तथ्य को कुछ इस प्रकार भी समझा जा सकता है, कि भारतीय वाद्य मात्र उन्हीं क्षेत्रों से ही प्रभावित है जहां–जहां से यह व्यापारी या आक्रांत भारत में आए। इस कारण सितार को फारसी, रबाब को अरबी इत्यादि सभी वाद्यों को भी फारस तथा अरब के वाद्यों के रूप में ही स्वीकार करने लगे और अंत में भारत में विदेशी व्यापार की नियत से आए यूरापियों द्वारा वायलिन को भी विदेशी वाद्य के रूप में स्वीकारने पर विवश कर दिया। यदि प्राप्त मूर्तियों, ग्रंथों, चित्रों, को देखा जाए तो ज्ञात होता है कि वर्तमान वाद्यों का मूल स्वरूप एकतंत्री, चित्रा, विपंची, में त्रितन्त्री, पिनाकी में ही प्राप्त होता है। इस प्रकार भारत संगीत कला के अर्न्तगत जितने भी तंत्री वाद्य प्राप्त होते है, उन्हें भारतीय वाद्य के रूप में स्वीकारा जाना ही भारतीय संस्कृति की धरोहर को और अधिक समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

****